Chapter. 1

प्रथम अध्याय

मिथिला, मैथिल और मैथिली

प्रथम अध्याय

मिथिला, मैथिल एवं मैथिली

मैथिली भाषा तथा उसका साहित्य भारतीय-साहित्य के विशाल अन्तराल के बीच जहाँ अंचल विशेष की सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं से अनुप्राणित होकर अपने निजी वैशिष्ट्य के साथ हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान करता आ रहा है वहां विद्यापति की काव्य-काकली के साथ उसका आरंभिक युग हिन्दी-काव्य-धारा की उस कोमल-कान्त-पदावली की भक्ति कालीन पद-परम्परा की साहित्यिक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। इस साहित्यिक परम्परा के दृष्टिकोण से हिन्दी की व्यापक परिधि में आनेवाली विभाषाओं के बीच एक प्रकार से स्थित मैथिलीका अपना ऐतिहासिक महत्व है। एक और उल्लेखनीय बात यह है कि हिन्दी की उन विभाषाओं के ही नहीं, अपितु प्राय: सभी नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य की नाट्य-रचना-परंपरा के दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि मैथिली की नाट्य परम्परा भी सर्व प्राचीन है। किसी देश के सामाजिक जीवन की जातीय अथवा सांस्कृतिक चेतना उद्बुद्ध होकर जिन अनेक रूपों में प्रकट होती है, उनमें साहित्य का स्थान अन्यतम है। इस दृष्टिकोण से यदि हिन्दी साहित्य के आदिकाल की ऐतिहासिक परिस्थितिओं को लक्ष्य किया जाय तो हमें ज्ञात होगा कि हिन्दी का विशाल प्रदेश या तो राजनीतिक संघर्षों में रत था या वाममार्गी साधनाओं का केन्द्र बना हुआ था ; फलत: साहित्य भी साम्प्रदायिक अथवा दरबारी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर लिखा जा रहा था, जिसे लक्ष्य कर के ही संभवत: राहुल सांकृत्यायनने इसे सिद्ध-सामन्त युग कहना अधिक उपयुक्त समझा था। किन्तु इसी समय मिथिला का अंचल उसका अपवाद बनकर भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अक्षुण्ण धारा से अभिसिंचित होकर उस युग में विद्या, कला एवं साहित्य की समृद्धि का अद्वितीय क्षेत्र बन गया था। कहना न होगा कि यहां के शासकों के संरक्षण में जो काव्य-धारा इस प्रदेश को परिप्लावित कर रही थी

वह अनेक दृष्टियों से हिन्दी के इतर उपप्रदेशों के साहित्य से अधिक महत्वपूर्ण है ।

यह निर्विवाद है कि साहित्य समाज की सांस्कृतिक चेतना का परिचायक हुआ करता है । विशेषकर नाट्य-साहित्य तो अन्य विधाओं की तुलना में उक्त चेतना को सर्वाधिक प्रतिविंबित करने में सर्वाधिक समर्थ एवं सुदाम हुआ करता है । अतएव मैथिली नाटकों के उद्भव और विकास का भली भांति अनुशीलन करने के लिये इस अंचल की निजी विशेषताओं एवं सांस्कृतिक व सामाजिक परम्पराओं पर विचार करलेना आवश्यक होगा । हिमालय की तराई और पुण्यतोया भागीरथी के बीच स्थित इस छोटे से प्रदेश का आज यद्यपि राजनीतिक भू भाग के दृष्टिकोण से कोई अस्तित्व नहीं दिखायी पड़ता किन्तु अपनी आंचलिक विशेषताओं के साथ आज भी यहां के निवासी एक स्वतंत्र सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्परा को अपने जीवन के बीच संजोये ही दिखायी पड़ते हैं और "मैथिल" इस नाम से जाने जाते हैं । इस तथ्य का मूल कारण अति प्राचीनकाल में प्रतिष्ठित मिथिला जनपद तथा उसकी दीर्घकालीन सांस्कृतिक परम्परा है जिसे यहां संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है ।

<u>मिथिला जनपद: एक ऐतिहासिक विश्लेषण</u> ----- शतपथ ब्राह्मण में सर्वप्रथम विदेह जनपद के उल्लेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मणकाल के पूर्व इस जनपद का अस्तित्व सम्भवत: नहीं था ।[१] शतपथ[२]

----

१. वैदिक इण्डेक्स - पृ. ३३३ (ए.ए. मैकडौनल तथा ए.बी. कीथ)

२. व्विदेघो ह माधवोऽग्निं वैश्वानरं मुखे बभार तस्य गोतमो राहूगण ऋषि: पुरोहित आस ------------ ।।१०।।
स होवाच व्विदेघो माथव: क्वाहं भवानीत्यत एव ते प्राचीनं भुवनमिति होवाच सैषाप्ये तर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा तेहि माथवा: ।।१७।।
टीका-- 'हि' यस्मा देवं माथवायाग्निरदात् तस्माते विदेहदेशा अपि माथवा इत्युच्यन्ते । (शतपथ १-४-१)

में "विदेघ" जनपद के राजा "माधव" या "माथव" कहे गये हैं जिनके गुरु का नाम "गोतम राहूगण" था और राजाने सदानीरा [१] (आधुनिक गंडक) नदी को पार कर अपने साथ लाए हुए अग्नि से उस प्रदेश में ब्राह्मण धर्म का सूत्रपातकर विदेह वंश की स्थापना की । पाद टिप्पणी क्रमांक दो की टीका से यह भी विदित होता है कि विदेह जनपद को माथव के नाम से भी अभिहित किया जाता था । किन्तु इसी ग्रंथ में दूसरे स्थल पर माथव (मिथिला) को विदेह जनपद की प्रधान नगरी बताया गया है ।[२] बृहदारण्यक [३] एवं कौषीतकि [४] आदि उपनिषदों में विदेह जनपद का ही उल्लेख है, जिसके राजा जनक ब्राह्मणवाद के प्रमुख प्रतिपालक कहे गये हैं । इन उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक इस जनपद की प्रसिद्धि विदेह नाम से ही थी ।

वाल्मीकिने स्पष्ट रूप से अनेक स्थलों पर मिथिला नगरी का उल्लेख करते हुए जनकपुरी को उसकी प्रधान नगरी बताया है ।[५] इस से दो संभावनाएं प्रकट होती हैं, प्रथम तो यह कि सम्पूर्ण प्रदेश को जनक की प्रधानता के कारण जनकपुरी कहा जाता था अथवा दूसरा यह कि जनक के निवास स्थल को जनकपुरी के नाम से जाना जाता था जो वस्तुत: राजधानी भी थी । आधुनिक युग के नेपाल राज्यान्तर्गत जनकपुर को उसीका ध्वंशावशेष मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है । परम्परागत अनुश्रुति एवं जनकपुर में स्थित विभिन्न स्थलों के निरीक्षण से इस मान्यता की पुष्टि होती है ।

---

१. मैकडौनल - ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर पृ. १७०
२. देखिये, शतपथ ११-३-१-२ तथा ६-२-१
३. देखिये, बृहदारण्यक उपनिषद् - ३-८-२
४. देखिये, कौषितकि उपनिषद् - ४-१
५. वाल्मीकि-रामायण, बालकाण्ड को राम का मिथिलापुरी गमन प्रसंग ।

अतएव यह कहा जा सकता है कि रामायण काल में मिथिला के साथ साथ जनकपुर का नाम सर्वप्रथम लोक प्रचलित हुआ ।

पुराणकाल में दोनों नामों का उल्लेख मिलता है किन्तु प्रचलित नाम मिथिला ही है । विदेह और मिथिला शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विभिन्न पुराणों में नयी नयी व्याख्याएं प्रस्तुत की गयी हैं । संक्षिप्त विष्णुपुराण [१] के अनुसार एकबार राजानिमि को यज्ञ करने की तीव्र इच्छा हुई और इस हेतु उन्होंने गुरू वशिष्ठ से यज्ञ कराने की प्रार्थना की । वे उस समय इन्द्र को यज्ञ कराने के लिए जा रहे थे, इसलिये लौटने पर उन्होंने यज्ञ करने का वचन दिया । किन्तु इसी मध्य राजा निमिने यज्ञ प्रारंभ कर दिया जिससे गुरू वशिष्ठ को क्रोध आ गया और उन्होंने सोते हुए राजा को शाप दिया कि तुमने मेरी अवज्ञा की है, अत: तू देह हीन हो जायेगा । इस पर राजाने भी शाप देते हुए कहा कि आपने मुझसे कारण जाने बिना ही शाप दिया है, अत: आप भी नष्ट देहहोजांय । यज्ञ समाप्ति के पश्चात् ऋषियोंने राजा के पुर्नर्जीवन के लिये प्रार्थना की किन्तु उन्होंने जीने की इच्छा प्रकट न की । अतएव अराजकता के भय के कारण ऋषियोंने अरणि से उनका मंथन किया जिससे एक कुमार उत्पन्न हुआ जो जन्म लेने के कारण "जनक" कहलाये । इनके पिता विदेह थे, इसलिये वे "वैदेह" कहलाये और मंथन से उत्पन्न होने के कारण उन्हें "मिथि" भी कहा गया ।

भागवत पुराण [२] "जनक" तथा "वैदेह" से संबंधित उपर्युक्त तथ्यों का तो समर्थन करता है किन्तु मिथि के स्थान पर उनका नाम "मिथिला"

---

१. अपुत्रस्य च भूभुज: शरीर महाशकमीरवो मुनुयोऽरण्यां मन्मथु: ।।
तत्र च कुमारो जज्ञे ।। जनना ज्जनक संज्ञा चावाप ।। अभूद्विदेहोऽस्य
पितेति वैदेह: मंथनान्मिथिरिति ।। (संक्षिप्त विष्णुपुराण -
४-५-८-२३

२. अराजक भयं नृणां मन्यमाना महर्षय: ।
देह ममन्थु: स्म निमे: कुमार: समजायत ।।
जन्मना जनक: सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहज: ।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिलायेन निर्मिता ।। (भागवत् पुराण -
९-१३-१२-१३

द्योतित करता है तथा उनके द्वारा मिथिला नगरी के निर्माण के तथ्य को भी प्रकाश में लाता है ।

"बौधायन धर्म सूत्र" तथा पालि का प्राचीनतम ग्रंथ "अंगुत्तर-निकाय"[१] में भी विभिन्न जनपदों का जो उल्लेख प्राप्त होता है उस में विदेह अथवा मिथिला के संबंध में कुछ भी नहीं बताया गया है । किन्तु "दीघ-निकाय"[२] में सात जनपदों का, उनकी प्रधान नगरी के साथ, उल्लेख मिलता है जिसमें विदेह जनपद की राजधानी के रूप में मिथिला का वर्णन किया गया है । इन बातों से ऐसा ज्ञात होता है कि प्राच्य जनपद के अन्तर्गत ही विदेह जनपद को सम्मिलित कर दिया गया होगा और उसके प्रधान जनपद - मगध अथवा वृजि - की सीमा के अन्तर्गत ले लिया गया होगा । इस तथ्य की पुष्टि पाणिनि के अष्टाध्यायी से भी होती है । उन्होंने अपने ग्रंथ में बाइस प्रधान जनपदों का उल्लेख किया है जिन में विदेह अथवा मिथिला की चर्चा नहीं है । उनके अनुसार "बिहार प्रान्त में गंगा के उत्तर का प्रदेश वृजि कहलाता था, जहां विदेह लिच्छवियों का राज्य था ।"[३]

उपर्युक्त विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण धर्म के प्रचार के पश्चात् विदेह एक सुसंगठित जनपद था और जो उपनिषद् काल में राजा जनक और याज्ञवल्क्य के कारण ब्रह्म-विद्या का प्रधान केन्द्र था । इस जनपद की राजधानी मिथिला नगरी थी । उस समय "जनपद में ग्राम समुदाय और नगर दोनों की स्थिति थी । नगर जनपद की राजधानी होती थी ।"[४] दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि विदेह एक जाति विशेष की संज्ञा भी थी । इस जाति की प्रधानता एवं प्रभुसत्ता होने के कारण

---

१. हिन्दू सिवलीज़ेशन - पृ.१८० (डा. राधाकुमुद मुकर्जी)
२. वही पृ.१८१
३. पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ. ७४ (डा. वासुदेवशरण अग्रवाल)
४. वही पृ.४२२

उस प्रदेश का नाम विदेह प्रचलित हुआ । पाणिनिने अपने सूत्रों में संकेत किया है कि मूल में जनपदों का नामकरण उस में बसनेवाले जनपदिन् क्षात्रियों के अनुसार ही हुआ था ।१ मैकडौनलने २ भी कहा है कि विदेह एक ऐसी जाति के लोगों का नाम है जिन का ब्राह्मण काल के पहले उल्लेख नहीं है । अतएव इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि बौद्धकाल तक विदेह जनपद एवं उसकी राजधानी मिथिला, इन दो नामों का ही व्यवहार होता था। कालान्तर में इस प्रदेश के अनेक नाम प्रचलित हुए ।

डा. जयकान्त मिश्र[3] ने "बृहद् विष्णुपुराण" के आधार पर इस प्रदेश के बारह प्राचीन नाम बताये हैं जो क्रमशः मिथिला, तीरभुक्ति, वैदेही, नैमिकानन, ज्ञानशील, कृपापीठ, स्वर्णलांगल, निरपेक्षा, विकल्मषा, रामानन्दकरी, विश्वभावनी और सर्वमंगला हैं । इन में से कई नाम भक्ति भावना से प्रेरित होकर उस प्रदेश के गौरव को प्रदर्शित करने के लिये उल्लिखित प्रतीत होते हैं और कतिपय नाम तो बहुत समय पश्चात् के जान पड़ते हैं । हमने यह देखा है कि बौद्धकाल तक केवल दो ही नाम प्रचलित थे । दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि विभिन्न मुख्य इतिहास ग्रंथों ४ के अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि "तीरहुत" नाम बहुत समय पश्चात् का है । इन इतिहासों से ऐसा विदित होता है कि मौर्यकाल के पश्चात् इस प्रदेश का "तीरहुत" नाम ही प्रचलित हुआ । यही कारण है कि इन में इस प्रदेश के लिये केवल इसी नाम का व्यवहार पाया जाता है । अतएव "बृहद् विष्णु पुराण" के इस अंश को प्रक्षेप स्वीकार करलेने में कोई आपत्ति नहीं है । इन बारह नामों में कालान्तर में तीरभुक्ति अथवा तीरहुत को प्रधानता प्राप्त हुई ।

---

१. पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ. ४२४

२. वैदिक इण्डेक्स पृ. ३३३

३. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १ पृ. ७

४. (क) हिन्दू सिवलीजेशन - डा. राधाकुमुद मुकर्जी ।
(ख) हिस्ट्री ओफ मेडियेवल हिन्दू इंडिया - प्रो. सी. वी. वैद्य ।
(ग) बिहार थ्रु द एजेज - सं. आर. आर. दिवाकर
(घ) राइज एण्ड फॉल ओफ द मुगल एम्पायर - डा. आर. पी. त्रिपाठी ।
(च) प्राचीन भारत का इतिहास - डा. रमाशंकर त्रिपाठी ।

इस नाम के संबंध में रासबिहारी दासने अपनी पुस्तक "मिथिला दर्पण" में तीन व्याख्या प्रस्तुत की है [१] जो इस प्रकार हैं -----

(क) शाम्भकी, सुवर्णकानन एवं तपोवन से मुक्तमान होने के कारण इसे तीरमुक्ति कहा गया ।

(ख) कौशिकी, गंगा तथा गंडकी नदियां इसकी सीमा का निर्धारण करत थीं, अतएव उनके तीरों से मुक्त मध्यवर्ती भू भाग को तीरमुक्ति की संज्ञा मिली ।

(ग) ऋटक्, साम और यजु: वेदों से आहुति देनेवाले ब्राह्मणों की निवास भूमि को "त्रि-आहुति" अर्थात् तीरहुत नाम से अभिहित किया गया ।

आज भी मिथिला के प्रदेश कौशिकी, गंगा तथा गंडकी नदियों द्वारा निर्मित प्राकृतिक सीमाओं से बना हुआ है । अत: "ख" में प्रस्तुत कारण-मीमांसा निश्चय ही समीचीन कही जा सकती है । भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो घोष महाप्राण ध्वनि "भ" कोमल होकर "ह" में परिवर्तित हुई जान पड़ती है जो कि हिन्दी ध्वनियों की विकास-परम्परा की सर्व सामान्य विशेषता है । "तीरहुत" नाम से संबंधित तथ्य मिथिला की उज्जवल सांस्कृतिक परम्परा को निर्दिष्ट करते हैं जिन पर संक्षेप में आगे विचार किया जायेगा । इस स्थल पर इस प्रदेश की सीमा के संबंध में भी सूत्ररूप में विचार कर लेना अपेक्षित है ।

भारत के प्राचीन जनपदों की राजनीतिक सीमाएं आन्तरिक अथवा बाह्य कारणों से सदैव परिवर्तित होती रहती थीं, किन्तु उनके सांस्कृतिक जीवन का प्रवाह कभी खंडित नहीं हो पाता था । जिसे स्पष्ट कहते हुए डॉ. वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है कि भाषाओं की इकाई के रूप में कतिपय प्राचीन जनपद आधुनिक युग में भी अवशिष्ट हैं । इन जनपदों के फैले हुए विस्तार में एक जनपद को दूसरे जनपद से पृथक् करनेवाली नदी-पर्वत आदि की प्राकृतिक सीमाएं थीं, एवं दो बड़े जनपदों के बीच में छोटे छोटे जनपद भी सीमाएं बनाते थे ।[२] मिथिला प्रदेश की प्राकृतिक सीमाओं के

---

१. वैदेही (मासिक पत्रिका) इतिहास विशेषांक नवम्बर-दिसम्बर १९६० पृ. ५८२ से उद्धृत ।

२. विस्तृत विवरण के लिए इष्ट का पाणिनि कालीन भारतवर्ष - पृ. ५७

निर्धारण का उल्लेख "बृहद् विष्णु पुराण"[१] के मिथिला खंड में प्राप्त होता है, जिसके अनुसार दक्षिण में गंगा, उत्तर में हिमालय, पूर्व में कौशिकी तथा पश्चिम में गंडकी, इस मध्य के भू भाग को "तीरहुत" या मिथिला कहा गया। चौबीस योजन आयाम-विस्तार वाला यह प्रदेश परमपावन कहा गया है। किन्तु जैसा कि संकेत किया गया है कि अनेक कारणों से सीमा में परिवर्तन होता रहता है। अतएव आज का मिथिला प्रदेश अपने पूर्वरूप की अपेक्षा अधिक संकुचित दृष्टि गोचर होता है।

उपनिषद् काल से ही इसकी सीमा में परिवर्तन प्रारंभ हो जाता है। मैकडोनलने [२] उल्लेख किया है कि कौषीतकि उपनिषद् में "विदेहों" को "काशियों" के साथ संयुक्त किया गया है और ऐतरेय ब्राह्मण में जातियों की तालिका में "विदेहों" को छोड़ दिया गया है जो संभवत: इस लिए कि इन्हें कोसल और काशि के साथ प्राच्य शव्द के अन्तर्गत सम्मिलित मान लिया गया है। काशि, कौसल और विदेह इन तीन जनपदों में "जलजातूकर्ण्य" नाम के एक ही पुरोहित थे और विदेह के राजा "अट्णार" एवं कोसल के राजा "हिरण्यनाभ" में रक्त संबंध था। अत: संभावना हो सकती है कि कोसल में विदेह को सम्मिलित कर लिया गया है।

किन्तु रामायणकालीन भारत वर्ष के मानचित्र [३] में विदेह जनपद का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल तक आकर पुन: इस प्रदेश का स्वतंत्र अस्तित्व प्रतिष्ठित हो गया था। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि पाणिनिने विदेह जनपद पर लिच्छवियों के शासन का उल्लेख किया है जिस की राजधानी वैशाली बतायी गयी है,

---

१. गंगा-हिमवतोर्मध्ये नदी पंच दशान्तरे।
तीरभुक्तिरिति ख्यातो देश: परम पावन:॥
कौशिकीन्तु समारभ्य गंडकीं अधिगम्य वै।
योजनानि चतुर्विंशत्यायाम: परिकीर्तित:॥
(लिंग्विस्टिक सर्वे ओफ इंडिया भाग ५ खंड २, पृ. १३ से उद्धृत)

२. वैदिक इण्डेक्स - पृ. ३३४

३. देखिये, डा. राधाकुमुद मुकर्जी कृत हिन्दू सिवलीजेशन में दिया हुआ मानचित्र पृ. १२०

जो कि डा. अग्रवाल के दिये हुए मानचित्र [1] से स्पष्ट है । बौद्धकाल में इस जनपद का उल्लेख तो किया गया है किन्तु कौसल के साथ इसे भी मगध में सम्मिलित कर लिया गया ।[2] अत: बौद्ध कालीन मानचित्र [3] में इस जनपद का स्वतंत्र उल्लेख नहीं प्राप्त होता है । विभिन्न इतिहासों-जिनका उल्लेख किया जा चुका है -- के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कालान्तर में, गुप्त काल से विदेह एवं वैशाली जनपदों के सम्मिलित प्रदेश को तीरहुत[4] कहा गया, जिसका व्यवहार आधुनिक काल तक हो रहा है ।

उपर्युक्त विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह प्रदेश आज अनेक राजनीतिक कारणों से अपने मूलरूप से संकुचित हो गया है । इसके लिये, उपरि निर्दिष्ट प्रमाणों के अतिरिक्त, इतना ही प्रमाण अभीष्ट होगा कि इस प्रदेश की परम्परागत प्राचीन राजधानी तथा प्राचीन भारतवर्ष के दार्शनिक चिन्तन, मनन एवं विचार-विवेचन के प्रधान केन्द्र के रूप में अवस्थित जनपुर नामक नगरी आज भी नेपाल देश के अन्तर्गत स्थित होकर इस की वर्तमान सीमा के बाहर हो गयी है । इस से स्वयं सिद्ध है कि यह प्रदेश प्राचीन काल में वर्तमान नेपाल राज्य के तराई के कुछ भाग तक अवश्य फैला हुआ था । पुराण के अनुसार इस प्रदेश की प्राकृतिक सीमा उत्तर में हिमालय तक थी, जिससे प्रकट है कि उस समय राजधानी लगभग मध्य में पड़ती होगी ।

भाषागत अध्ययन के द्वारा भी इसे दृष्टिगत किया जा सकता है । मिथिला की सीमा के पास जनकपुर ही नहीं, उसके आगे भी हिमालय की तराई में आज भी मैथिली भाषा ही बोली जाती है । साहित्यिक-परम्परा भी मिथिला प्रदेश के, आज की तुलना में, अधिक विस्तृत स्वरूप को

×~~१. देखिये~~, डा. राधाकुमुद मुकर्जी कृत हिन्दू सिवलीजेशन में दिया हुआ मानचित्र पृ.१२०

१. देखिये, डा. वासुदेवशरण कृत पाणिनि कालीन भारतवर्ष - मानचित्र संख्या चार पृ.१८१ तथा बिहार थ्रुद एजेज पृ.५१

२. हिन्दू सिवलीजेशन पृ.१८१-१८५

३. देखिये, वही पृ.१७६ पर दिया गया मानचित्र ।

४. बिहार थ्रुद एजेज - पृ.५३

प्रमाणित करती है । अध्ययन की परिधि में आनेवाले मैथिली नाटकों के रचयिता वर्तमान मिथिला प्रदेश के ही नहीं हैं अपितु उनमें से अनेक उन विस्तृत प्रदेशों जो कि आज भारत से बाहर के हैं, जिन पर परवर्ती अध्यायों में प्रसंगानुसार विचार किया जायेगा ।

अतएव उपर्युक्त दृष्टिकोण से यदि इस प्रदेश की आधुनिक कालीन सीमा का निर्धारण करना चाहें तो इसके अन्तर्गत चम्पारन जिले का कुछ भाग, पूर्वी मुंगेर, उत्तरी भागलपुर, पश्चिमी पुर्णिया, दक्षिण मुजफ्फरपुर, दरभंगा और सहरसा का भू भाग आजाता है । डा. उदयनारायण तिवारीने[१] भाषागत अध्ययन के आधार पर इसे प्रमाणित भी किया है । साथ ही उसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्परा पर आधारित पूर्ववर्ती विवेचन भी हमारे इस मन्तव्य की पुष्टि करता है । किसी प्रदेश की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परम्परा के निर्माण में वहां की प्रादेशिक विशेषता का बहुत बड़ा हाथ रहा करता है, जिसे संक्षेपमें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है -----

प्रादेशिक विशेषता --------- भूमि और नदी ----------

मिथिला प्रदेश की भूमि के संबंध में सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण[२] में मिलनेवाले उल्लेख के अनुसार सदानीरा नदी के पूर्व का भू भाग माथव के जाने से पूर्व बहुत ही भींगा था जिसके कारण यह प्रदेश निर्जन-सा था । किन्तु ब्राह्मण धर्म के प्रसार एवं माथव के जाने के पश्चात् वहां ब्राह्मणों की बस्ती हुई और लोगोंने उसे यत्नपूर्वक कृषि-कार्य के योग्य बनाया । कालान्तर में यह भू भाग प्राकृतिक खाद के कारण अत्यधिक उर्वरा हो गया । डा. जयकान्त मिश्र[३] का कथन है कि सन् १९३४ के भूकम्प के पश्चात् इसकी उर्वराशक्ति वही नहीं रही

---

१. भारत का भाषा सर्वेक्षण (अनु. डा. उदय नारायण तिवारी) पृ. २७५
२. तदु हैतर्हि । क्षेत्रतरमिव ब्राह्मणाऽउ हि नूनमेनदृय ह्यरेसिष्वदन्तमपि जघन्यै नैदाघे समिवैव कोपयति तावच्छी तानतिदग्धा ह्यग्निना वैश्वानरेण ।।१६।
(शतपथ १-४-१ आदि)
३. ए हिस्ट्री ओफ मै. लिट्. भाग १ पृ. १०

जो मध्यकाल में थी । साधारणतया सारे प्रदेश की ऊपज अनेक कारणों से कम होती जा रही है किन्तु इस भू भाग में नदियों की बहुलता से प्रत्येक वर्ष ऊपज हो ही जाती है । यहां की मुख्य नदियों में कमला, कोशी, बागमती, गंडकी, जीवछ, बलान, त्रियुगा का नाम लिया जा सकता है । इन नदियों के अतिरिक्त अनेक जलाशय तथा बाढ़ के पानी के कारण बने हुए "चओर" से भी सिंचाई का काम लिया जाता है । इन "चओरों" के कारण यहां की भूमि पौष महीने तक नम रहती है, जिस पर हरियाली भी छायी रहती है ।

कमला एवं कोशी नदियां तो यहां के लिये भयंकर शाप रूप ही हैं । प्रत्येक वर्ष बाढ़ के समय दो-तीन गांव के बह जाने के समाचार प्राप्त होते रहते हैं । अधिकांश भू भाग परती ही पड़े रह जाते हैं । बाढ़ से होनेवाले उपर्युक्त हानि के साथ ही वह यहां की उपज के लिए वरदान भी सिद्ध होती है । बाढ़ग्रस्त प्रदेशों से पानी हट जाने के पश्चात् नदियों द्वारा छोड़ी हुई मिट्टी से भूमि उर्वरा हो जाती है । ये नदियां अपने साथ एक प्रकार की चिकनी काली मिट्टी बहाकर ले आती हैं और दोनों किनारों को पाट देती हैं । इस मिट्टी को यहां की भाषा में "पांक" कहा जाता है जिस पर धान की उपज बड़ी अच्छी होती है । इस "पांक" पर अन्य किसी प्रकार की घास नहीं पनपने पाती जिससे कृषकों को अधिक उद्योग भी नहीं करना पड़ता है । इस प्रदेश में, आधुनिक युग में भी प्रगतिशीलता का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है । आलस्य या परस्पर विरोध के कारण सरकार की ओर से प्राप्त होनेवाली सहायता से भी लाभ नहीं उठाया जा रहा है । औद्योगिक क्षेत्र न होने के कारण सरकार भी अधिक ध्यान नहीं दे रही है जिससे अभी तक इस प्रदेश में समुचित सिंचाई का प्रबंध भी नहीं हो पाया है । अतएव यहां के कृषकों को मुख्य रूप से वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है, और जिस वर्ष अनावृष्टि हो जाती है उस समय उन्हें भीषण परिस्थिति का सामना करने को विवश होना पड़ता है ।

वर्षा के लिये सघन जंगल का होना आवश्यक है किन्तु प्रतिदिन की बढ़ती हुई जन संख्या के कारण क्षुधा शांति के लिये अथवा बस्तियों के लिये जंगलों तथा परतियों को समाप्त कर समतल बनाया जा रहा है। कुछ वर्ष पूर्व तक इस प्रदेश में इतने सघन वन थे कि प्राय: भयानक वन्य-पशुओं का आक्रमण होता रहता था। इस कारण यहां के निवासियों को, विशेषकर रात में, बड़ी सतर्कता रखनी पड़ती थी। यहां का जलवायु समशीतोष्ण है। साधारण तया इस भू भाग में प्रत्येक प्रकार की ऊपज होती है किन्तु मुख्य ऊपज धान है। भाद्रपद में भी कुछ फसल तैयार हो जाती हैं जिन्हें "भदई" १ कहते हैं। प्राय: निर्धन जनता इन्हें इस समय काटकर अपना उदर पोषण करती हुई आगे के कृषि कार्य में प्रवृत्त होती है। अतएव जब कभी वर्षा अधिक विलंब से होती है तो निर्धन जनता के सामने कुछ महीनों के लिये उदर-पोषण की विषम समस्या-सी खड़ी हो जाती है। इसके अतिरिक्त यहां आम, लीची, केला, सीसम, "गम्हाड़ि" आदि वृक्षों की भी बहुलता है। कहीं कहीं तो सीसम, आम, लीची आदि के बगीचे छह-सात बीघों तक दिखाई पड़ते हैं।

उपर्युक्त विवरण से प्रकट है कि यहां की अधिकांश जनता के जीविकोपार्जन का प्रधान साधन कृषि है। साथ ही, कृषिकार्य के लिये सहायक वैज्ञानिक साधनों एवं सिंचाई की समुचित व्यवस्था के लिये नहरों आदि के अभाव के कारण यहां की कृषक जनता को सदा प्रकृति की दया पर ही आश्रित रहने को विवश होना पड़ता है।

सामान्य-जीवन का स्वरूप ---------- उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि यह प्रदेश कृषि-कार्य द्वारा जीविकोपार्जन करनेवाले, आर्थिक दृष्टिकोण से समृद्धि हीन कृषकों का प्रदेश है, तथा आर्थिक जीवन के प्रगतिशील स्रोतों को देखते

---

१. धान की एक जाति जो भाद्रपद में काटी जाती है।

हुए अन्य प्रदेशों की तुलना में पिछड़ा हुआ या अविकसित भी कहा जा सकता है । अत: स्वाभावत: यहां का जीवन सरल है । यहां के गांवों में रहनेवाले बहुत ही सात्विक एवं शांति प्रकृति के होते हैं । घरके प्रति उन्हें एक प्रकार से ऐसा मोह होता था कि दूर देश में जाकर नौकरी आदि द्वारा अर्थोपार्जन करना वे मानों पाप समझते थे, जो इनकी कट्टरवादिता को प्रकट करता है । इस परंपरा के कुछ अवशिष्ट चिन्ह इस युग में भी देखे जा सकते हैं । इनके व्यवहारों को देखकर आश्चर्य तो तब होता है जब युगानुरूप परिवर्तन एवं गतिशीलता से अनभिज्ञ बनकर प्राचीन युग की केवल चर्चा ही नहीं करते अपितु वैसा आचरण भी करते दिखाई पड़ते हैं । उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति किसी तालाव में साबुन से कपड़ा साफ कर रहा है या स्नान कर रहा है तो उसके छींटे पड़ने से अपवित्र हो जाने के भय से कुछ वृद्ध उस घाट पर स्नान करना भी छोड़ देते हैं । तथाकथित कट्टरवादी नैष्ठिक वृद्ध दर्जी के हाथ का सिला हुआ वस्त्र व्यवहार में नहीं लाते । किन्तु शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा युग गत मान्यता एवं पाश्चात्य संस्कृति-सभ्यता से प्राप्त नव जागरण के कारण अब उक्त स्थिति में परिवर्तन आ गया है ।

उपरि निर्दिष्ट नैष्ठिकता, कट्टर आचारवादिता एवं स्वधर्मे निधनं श्रेय: की भावना के कारण जहां एक ओर यहां पर भारतीय धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता की रक्षा हुई और इनके रूप स्थिर रहे, वहीं दूसरी ओर समाज में अनेकानेक कुरूढ़ियां एवं कुप्रथाएं भी आ गयीं जिसके कारण वह जर्जरित हो गया । समय की गति के साथ चलने में अक्षमता के कारण इस प्रदेश का विकास बहुत समय पश्चात् दृष्टिगत होता है । अनेक क्षेत्रों में यह इस समय भी पिछड़ा हुआ ही है । इस संकीर्णता के कारण यहां का समाज सतत् पारस्परिक विरोध से संघर्षशील रहता है । जनश्रुति है कि राम के विवाह के अवसर पर यहां के निवासियोंने मिथ्या अहंभाव दर्शाया था जिससे रुष्ट होकर रामने शाप दिया कि मैथिल सदा के लिये घर में वीरता प्रदर्शित करने-वाले किन्तु युद्ध के नाम से ही भयभीत होनेवाले, परस्पर विरोधी

एवं मिथ्याकुलाभिमानी होंगे ।[१] संभवत: यह जनश्रुति उक्त सामाजिक विशेषता के आधार पर परिकल्पित कर ली गयी है । अंतिम दो गुणों के कारण इस प्रदेश में अनेक कुप्रथाओं का समावेश हुआ तथा विकास का मार्ग अवरूद्ध रहा, और आज भी इन्हीं दो गुणों के कारण सरकारी सहायता प्राप्त होने पर भी समुचित व्यवस्था के अभाव में विकास नहीं हो रहा है । अध्ययन की परिधि में आनेवाले अनेक नाटकों में इन प्रवृत्तियों पर गहरा व्यंग्य किया गया है जिनका विवेचन परवर्ती अध्यायों में प्रसंगानुसार किया जायेगा ।

खान-पान के विषय में मैथिलों की अपनी अलग विशेषता है । "तीन तीरहुतिया तेरह चौका" की कहावत आज भी कुछ अंशो में चरितार्थ होती दिखायी देती है । वर्णाश्रम धर्म एवं छुआछूत के अनुयायी होने के कारण इस प्रदेश का ब्राह्मण-समाज बहुत सतर्क है । आधुनिकता के कारण आज की व्यवस्था बदल गयी है । आचार-विचार की यह परम्परा अब कुछ व्यक्तियों में ही सीमित है । जैसाकि कहा जा चुका है कि इस प्रदेश की मुख्य ऊपज धान है, अत: यहां दोनों समय केवल भात खाने की ही प्रथा है । रोटी खाना दरिद्रता या कृपणता का चिन्ह समझा जाता है । विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि दामाद, समधी या अन्य विशिष्ट कुटुम्बों को जिस रूप में भोजन कराया जाता है वह बहुत ही आकर्षक है । पूर्व कथित आगतों के समक्ष एक बड़ी-सी थाली रखी जाती है और उसके चारो ओर सजाकर पृथक् कटोरे में विभिन्न प्रकार के व्यंजनादि परोसे जाते हैं जिन की संख्या दस से कम नहीं होती । इस प्रक्रिया को यहां की भाषा में "सचार" कहा जाता है । विवाहादि अवसरों पर आनेवाले बारातों को भी इसी रूप में भोजन कराया जाता है । यह प्रथा मिथिला की निजी विशेषता है ।

---

१. गृहे शूरा रणे भीता: परस्पर विरोधिन: ।
कुलाभिमानिनो यूयम् मिथिलायां भविष्यथ ।।
लिंग्विष्टिक सर्वे ओफ इंडिया, भाग ५ - खंड २ पृ. १३ से उद्धृत ।

इस प्रदेश की विभिन्न जातियों का पारस्परिक संबंध और व्यवहार परिवार जैसा ही है। भ्रातृत्व के आधार पर सहकार एवं सहअस्तित्व की भावना से सरल जीवन व्यतीत करते हैं। यहां के विधर्मी मुसलमान भी इस समाज के एक अविभाज्य अंग बन गये हैं। मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव यहां के जन जीवन पर भी पड़ा है। 'दाहा' या 'ताजिया' के उत्सव में हिन्दू जनता केवल सम्मिलित ही नहीं होती अपितु वे अनिष्ट निवारणार्थ मनौती भी रखती हैं और सविधि पूजती भी है। यहां के व्यवहार में हिजरी संवत् ही प्रचलित है। सभी वर्णों के अशिक्षित वर्ग इस संवत् के अतिरिक्त अन्य संवत् से प्राय: अपरिचित ही रहा करते हैं।

मिथिला प्रदेश की 'पंजी प्रथा' यहां के ब्राह्मण-समाज की पृथक विशेषता है, जिसकी स्थापना, यहां की मान्यता के आधार पर, राजा हरिसिंह देवने की। इस प्रथा को इस प्रदेश में बहुत ही सम्मान और आदर प्राप्त होता रहा है। इस की महत्ता इसी से सिद्ध है कि इस युग में अनेक कारणों से इसकी अनुपादेयता होने पर भी तथाकथित कट्टरवादी समाज इसका परित्याग करने को उद्यत नहीं है। डॉ.जयकान्त मिश्र[१] लिखते हैं कि पंजीप्रबंध की प्रथा मिथिला के सामाजिक जीवन के लिये महत्वपूर्ण प्रेरणा-स्त्रोत है। इसने धर्म एवं ज्ञान के क्षेत्र में जन-जीवन को उद्बुद्ध किया, रक्त संबंध को उसके विशुद्ध रूप में सुरक्षित रखा और साथ ही यहां के विभिन्न परिवारों के संबंध में वंशावलियों के रूप में आधिकारिक ऐतिहासिक तथ्यों को सुरक्षित रखा।

किंवदन्ती के अनुसार एक समय राजा हरिसिंह देवने मिथिला के ब्राह्मणों को अपने दरबार में आमंत्रित किया, साथ ही उन्होंने यह भी घोषणा की कि निर्धारित समय पर उपस्थित होनेवाले व्यक्तियों पर ही विशेष रूप से विचार किया जायेगा। आदेश के प्रसारित होने पर कुछ धनलोलुप ब्राह्मण

---

१. दृष्टव्य - ए हिस्ट्री ओफ मै. लिट्. भाग १ पृ.३१

बिना स्नान-पूजा के दरबार में समय से बहुत पूर्व ही उपस्थित हुए, कतिपय शीघ्रता से अति संक्षेप में अपना दैनन्दिन कर्म समाप्त कर, समय-सीमा के अन्तर्गत ही समुपस्थित हुए और कतिपय ऐसे भी ब्राह्मण थे जो निश्चिन्त से अपना नित्य कर्म समाप्त कर कुछ विलम्ब से दरबार में पहुंचे। दरबार की सायंकालीन सभा में विलम्ब के कारण के अनुसंधान के पश्चात् हरिसिंह देवने उन ब्राह्मणों को ब्राह्मणत्व की सर्वोच्च पदवी प्रदान की जिन्होंने अपना दैनन्दिन कर्म पूर्ण रूप से समाप्त किया था। वे 'श्रोत्रिय' कहलाये और शेष लोगों को क्रमश: 'योग', 'पंजीवद्ध' एवं 'जयवार' की श्रेणी में रखा गया। इस उपर्युक्त तथ्य से यह प्रकट है कि प्रारंभ में इस कुलीनता के विभाजन का आधार असंदिग्ध रूप में कर्म की प्रधानता, नैष्ठिकता, आचार शुद्धि, आहार और व्यवहार रहा होगा। एक अन्य तथ्य भी प्रकाश में आता है कि मगध या अन्य स्थानों में फैले हुए बौद्धधर्म के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव के कारण मिथिला में प्रचलित कतिपय नियमों एवं व्यवहारों को तथा तज्जन्य रक्त मिश्रण की परम्परा को इस समाज से ~~निर्मुक्त~~ निर्मूल करने के लिये भी, संभवत: कुलीनता के तथाकथित विभाजन को स्वीकार किया गया।[1]

कालान्तर में इस नितान्त नवीन विचार-धारा के प्रति लोगों का आकर्षण, रक्त-शुद्धता का ध्यान, पारस्परिक संबंध एवं व्यवहार का निश्चय तथा भावी पीढ़ियों की सुविधा के लिये 'पंजीका' की व्यवस्था की गयी। इस व्यवस्था से 'पंजीकार' तथा 'घटक' इन दो वर्गों का उदय हुआ।[2] पारस्परिक संबंधों का निर्णय एवं कुलीनता के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिये व्यावसायिक पंजीकारों तथा घटकों की भी समुचित व्यवस्था की गयी जिनकी वंशपरंपरा आज भी विद्यमान है। इन पंजीकारों के पास मिथिला

---

१. देखिये, बिहार थ्रुद एजेज़ - पृ. ४२४

२. वही - पृ. ४२५

के प्रत्येक गांव के ब्राह्मणों की विवाह-सूची, उनके मूल एवं गोत्र के अनुसार, रहती है । विवाह के अवसर पर वर एवं कन्या पक्षवाले, संबंध के उचितानुचित के विषय में अन्तिम सम्मति पंजीकार से ही लेते हैं । वह अपनी स्वीकृति देता हुआ अपनी पंजिका में इस संबंध का उल्लेख कर देता है और साथ ही एक ताल पत्र पर मांगलिक श्लोक के पश्चात् इन दोनों के पिता-पितामह का नामोल्लेख करते हुए संबंध को स्थिर कर देता है । तालपत्र की इस प्रक्रिया को यहां की भाषा में 'सिद्धान्त' लिखवाना कहा जाता है ।

इस तथाकथित कुलीनता के विभाजन में जहां एक ओर उपर्युक्त गुण विदयमान थे, वहीं दूसरी ओर आज इसी के कारण समाज में अनेक कुरूढ़ियां, कुसंस्कार, मिथ्याडम्बर आदि दुर्गुणों का भी समावेश हुआ । ईर्ष्या, द्वेष और मिथ्याभिमान पर आधारित इस विभाजनने सामान्य जनों के मध्य एक अन्तराय को उत्पन्न कर दिया । समाज में अनेक कुरीतियां आ गयीं । मिथ्याकुलाभिमान, औपचारिकता एवं कुहूरपंथी के कारण समाज जर्जरित हो गया ।[१] कुलीनता के नाम पर भ्रष्टाचार और व्याभिचार को प्रश्रय मिला । बहु-विवाह की प्रथा के साथ ही साठ-सत्तर वर्ष के वृद्ध के साथ षोडषियों का विवाह कर के जातिवाद की नृशंस वेदी पर किशोरियों को सुहाग का बलिदान दिया जाता था । अत: स्पष्ट है कि जिसकी नींव रक्त शुद्धता परखी गयी थी उसी में रक्त मिश्रण का घिनौना व्यापार किस रूप में प्रचलित हो गया । जिस पवित्रता को इस विभाजन का आधार माना गया, आज उन्हीं कुलीन के वंशधरों से अपवित्रता भी मुख फेर लेती है । इन तथ्यों को अवचेतन मन से सभी स्वीकार करते हैं किन्तु मिथ्याडम्बर के कारण वे तथाकथित कुलीन, उस जातिवाद की पूंछ पकड़कर वैतरणी को पार करने के प्रयास में लगे हुए हैं । इन कुप्रथाओं पर यहां के अनेक साहित्यकारोंने खुलकर प्रहार किया है, जो कि परवर्ती अध्यायों में विवेचित प्रस्तुत अध्ययन की परिधि में आनेवाले अनेक मैथिली नाटकों से स्पष्ट है ।

---

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़ पृ. ४२५

सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थिति --------- आज की मिथिला सांस्कृतिक दृष्टि से अवश्य शिथिला सी दिख पड़ती है किन्तु इसकी सांस्कृतिक एवं दार्शनिक परम्परा अत्यंत प्रोद्भासित होने के साथ साथ स्वतेजसा सम्पूर्ण विश्व को आलोक-पथ निदर्शित करती रही है । इस प्रदेशने ऐसे मनीषियों को उत्पन्न किया है जिन्होंने केवल भारत ही नहीं अपितु विश्व के द्रष्टाओं एवं ज्ञानियों में शीर्षस्थान को प्राप्त किया है । जनक, याज्ञवल्क्य एवं गौतम की यशोगाथा शतपथ एवं विभिन्न उपनिषदों में गायी गयी है । जनक सदेह होते हुए भी विदेह थे, भौतिक सुख साधनों के मध्य में रहकर भी वे जल-कमलवत् अलिप्त रहा करते थे । गीता[१] में कहा गया है कि जनक के सदृश ही लोकसंग्रह पर ध्यान रखते हुए भी ज्ञान के आधार पर निष्काम कर्म के द्वारा मुक्ति की साधना करनी चाहिये । इनके दार्शनिक चिन्तन एवं मुक्ति साधना के संबंध में एक किंवदंती प्रचलित है, जिसके अनुसार मिथिला प्रदेश के भस्मीभूत हो जाने पर भी उनका अन्तरात्मा तद्वत् ही स्थित रहता है ।[२] जिस आत्मा में ज्ञानाग्नि प्रज्वलित है, उसमें भौतिक अग्नि का प्रभाव पड़ना बंध्यापुत्र के समान असंभव है । अतएव जनक पूर्ण अध्यात्म विद्या के प्रतीक कहे गये हैं । यह तो पुराण प्रसिद्ध घटना है कि शुकदेव मुनि भी परमतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने लिये इनके निकट समुपस्थित हुए थे । बृहदारण्यक उपनिषद[३] के अनुसार इन की प्रसिद्धि इतनी थी कि देश के प्रत्येक भाग के लोग इनके चरणों में बैठकर ज्ञानार्जन के लिये आतुरता से दौड़े हुए आते थे । विष्णु पुराण[४] के अनुसार इस वंश के प्रत्येक राजर्षि दार्शनिक चिन्तन एवं परम तत्त्व के ज्ञान में अग्रगण्य हुआ करते थे ।

---

१. देखिये, गीता ३-२०
२. मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन ।
३. देखिये, बृहदारण्यक उपनिषद २-१-२, ४ : ३-६ आदि
४. प्रायेणैते आत्मविद्याश्रयिणो भूपाला भवन्ति (वि.पु.४-५-३४)

याज्ञवल्क्य एवं उनकी दोनों पत्नियों के अध्यात्म ज्ञान विषयक संवादों से बृहदारण्यकादि उपनिषद भरा हुआ है । ये राजा जनक के दरबार की शोभा की वृद्धि कर रहे थे । जनकने एक समय एक सहस्त्र गाय उन ब्राह्मण को दान में देने का विचार किया जो देश के ककुद स्थानीय अध्यात्म निष्ठ हों । कुरू, पांचाल आदि देश के सभी उद्‌भट्‌ मनीषियोंने एक स्वर से, उस सभा में याज्ञवल्क्य की विजय स्वीकार की ।[१]

जनक और याज्ञवल्क्य ने लोकहित एवं आध्यात्म-ज्ञान के मार्ग को सर्व जन सुलभ बनाने के लिये यज्ञ, कर्म और गार्हस्थ्य को सन्यास के साथ समन्वय किया जिसे कर्म योग में परम तत्वका साक्षात्कार कहा जा सकता है । इनके द्वारा निर्मित इस प्रशस्त पथ पर मिथिला प्रदेश का सामान्य जन भी अग्रसर होने लगा । इनके प्रसाद से अध्यात्म ज्ञान का क्षेत्र सीमित न रहकर विस्तृत हो गया, जिसका लाभ समाज का प्रत्येक व्यक्ति लेने लगा और वह भौतिक साधनों के मध्य जलकमलवत्‌ जीवन व्यतीत करने लगा । 'भागवत्‌ पुराण'[२] भी हमें बताता है कि यहां के निवासी गार्हस्थ्य जीवन में लिप्त रहते हुए भी द्वन्द्व से निर्मुक्त रहा करते थे ।

इस काल के तीसरे चिन्तक हैं न्याय दर्शन के प्रणेता गौतम । हम पूर्व विवेचन में देख आये हैं कि शतपथ के अनुसार विदेघ माथव के गुरू का नाम गौतम राहूगण था । स्कन्द पुराण[३] के अनुसार मिथिला के ब्रह्मपुरी नामक ग्राम में तापस गौतम निवास करते थे । आज भी 'गौतम-स्थान' दरभंगा जिले के कमतौल रेल्वे स्टेशन के निकट स्थित है, जहां पर गौतमकुण्ड भी है ।

---

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़ पृ. १२३

२. एते वै मैथिला राजान्नात्म विदया विशारदा: ।
योगेश्वर प्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहष्वपि । (भागवत ९-१३-२७)

३. आसीद्‌ ब्रह्मपुरी नामा मिथिलायां विराजित: ।
तस्यां लसति धर्मात्मा गौतमोनाम तापस: ।।
(बिहार थ्रु द एजेज़ पृ. १२४ से उद्धृत)

उपर्युक्त तीन दर्शन एवं परमतत्त्व के चिन्तनकों के पश्चात् मिथिला का सांस्कृतिक इतिहास अन्धकार के गर्भ में विलीन हो जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि लिच्छवियों के शासन में इस पल्लवित एवं पुष्पित परम्परा को समुचित प्रश्रय नहीं प्राप्त न होने के फलस्वरूप वह मुरझा गयी होगी। जैसा कि कहा जा चुका है कि पाणिनि के समय तक इस प्रदेश पर लिच्छवियों का शासन स्थापित हो चुका था और राजधानी वैशाली नगरी हो गयी थी। जैनधर्म के प्रवर्तक महावीर का जन्म वैशाली नगर में ही हुआ था और इनकी माता भी उसी नगर के किसी क्षत्रिय राजा की पुत्री थी। अतएव लिच्छवियों के हृदय में उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म के प्रति आदर और आकर्षण का होना अति स्वाभाविक था।[१] इसके पश्चात् बौद्ध धर्मने संभवत: इस भू भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया होगा। इतिहास हमें बताता है कि बौद्ध धर्म के मुख्य केन्द्रों में एक वैशाली नगरी भी थी। इस धर्म का प्रभाव श्रावस्ती से लेकर बिहार के चम्पानगर तक पूर्णरूप से विस्तृत था।[२] अतएव उपर्युक्त तथ्यों से प्रकट है कि उपर्युक्त अधिष्ठान के अभाव में जनक और याज्ञवल्क्य आदि द्वारा प्रणीत कर्म, योग एवं सन्यास की समन्वित धारा का स्रोत अन्त:गामी बन गया होगा जिसके कारण उसका सुस्पष्ट चित्र उपलब्ध नहीं हो रहा है।

उक्त अन्त: सलिला धारा को आठवीं से दसवीं शतीतक पूर्णरूप से प्रकट करने का सत्प्रयास यहां के मनीषियों द्वारा किया गया। मिथिला प्रदेश ने जितने नैयायिकों एवं मीमांसकों को उत्पन्न किया उतना प्राय: अन्य किसी प्रदेशने नहीं किया। परम्परागत सनातन संस्कृति एवं विचार के पंथ की रक्षा के लिये तथा बौद्ध, जैन एवं अन्य विरोधी पंथो को निर्मूल करने के लिये ही संभवत: मिथिला में मीमांसा और न्याय का इतना अधिक

---

१. देखिये, बिहार थ्रू द एजेज़ पृ. १२५-२७
२. वही पृ. १४१

प्रचार हुआ । आठवीं शताब्दी के भारत प्रसिद्ध मीमांसक मण्डन मिश्र से सभी परिचित हैं । एकबार शंकराचार्य को भी इन से पराजित होना पड़ा था । अन्त में, कहा जाता है कि, दोनों ने मिलकर बौद्ध एवं जैन धर्म को पराजित कर सनातन धर्म के विजय-पताका को लहराया ।[१] मंडन मिश्रने कर्मकाण्ड पर अधिक बल देकर उपरि कथित दोनों धर्मों को यहां से हटाने का मार्ग अपनाया । आज भी मिथिला प्रदेश के प्रत्येक ग्राम के प्रवेश द्वार पर एक 'ब्रह्म' की स्थापना है जिनको छाग-दान दिया जाता है । संभवत: अहिंसक बौद्ध एवं जैन को ग्राम में प्रवेश न करने देने लिये यह व्यवस्था निर्मित हुई हो । नवीं शताब्दी के षाड्दर्शन टीकाकार वाचस्पति मिश्रने भी इन दर्शनों के अतिरिक्त अन्य वादों का खण्डन कर प्राचीन पंथ का मंडन ही नहीं अपितु प्रचार और प्रसार भी किया ।

इनके पश्चात् दसवीं शताब्दी में उदयनाचार्यने भी बौद्ध एवं जैन धर्म के अवशिष्ट मूलों को पूर्ण रूप से उच्छिन्न कर समन्वित विचार-धारा को प्रवाहित किया । निरीश्वर-वादी पर इन्होंने निर्मम प्रहार किया और अनेक प्रमाणों के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया । इनकी इस कठिन साधना पर भी जब वह सर्व शक्तिमान द्रवित न हुआ तो इन्होंने उसे भी ललकारा । किंवदन्ती के अनुसार इन्होंने सर्व शक्तिमान का आह्वान किया कि अभी ऐश्वर्य के मद से तुम मेरी अवज्ञा कर रहे हो, किन्तु ध्यान रखो कि पुन: बौद्धमत के प्रचार होने पर तुम्हारी रक्षा का भार मेरे अधीन ही होगा ।[२]

इन तीनों मनीषियों के द्वारा अवरोधक तत्वों के निराकरण से कर्मकाण्ड प्रधान समन्वित विचार - स्त्रोत इस युग तक प्रवहमान होता रहा है । इस मूल स्त्रोत में समय समय पर अन्य स्त्रोतों का संगम भी हुआ है जिसका

---

१. देखिये, बिहार थ्रू द एजेज़ पृ. ३३६

२. ऐश्वर्य मदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्तसे ।
समायाते पुनर्बौद्धे ममाऽधीना तव स्थिति: ।।

मूलरूप वेदों में निहित है । मिथिला प्रदेश मध्यकाल में भी सांस्कृतिक एवं शास्त्रीय ज्ञानार्जन का केन्द्र रहा है । इसकाल में तांत्रिक विश्वास और विचार-व्यवहार पर आधारित, शिव, शक्ति और विष्णु की पूजा-पद्धति प्रचलित हुई ।[१] इसके साथ ही तांत्रिक सिध्धान्त में विश्वास रखनेवाले नाथ-सिद्ध सम्प्रदायों का भी प्रभाव पड़ने लगा जिसका उल्लेख ज्योतिरीश्वरने में 'वर्णरत्नाकर' में किया हैं ।[२] यद्यपि इस प्रदेश में सदा से पंचदेवोपासना की पद्धति प्रचलित रही है, किसी सम्प्रदाय के प्रति अनावश्यक सम्मान भी नहीं रहा है, तथापि शिव-शक्ति की भक्ति का प्रचार और प्रसार यहां पर अपेक्षाकृत अधिक अवश्य दृष्टिगोचर होता है । इस प्रदेश के लोक-जीवन के दैनन्दिन व्यवहारों से इस तथ्य की पुष्टि होती है । शुभ प्रसंगों के प्रारंभ में शक्ति के गीत - जिसे यहां की भाषा में 'गोसाउनिक' गीत कहते हैं -- गाये जाते हैं, इस गीत के बिना कार्यारंभ हो नहीं सकता । इसी आधार पर अध्ययन परिधि के अन्तर्गत आनेवाले नाटककारोंने भी ग्रंथारंभ में 'गोसाउनिक' गीत से ही वन्दना की हैं जो कि परवर्ती अध्यायों का विषय है ।

इसके अतिरिक्त उपनयन तथा विवाह के प्रसंगों पर सर्वप्रथम 'मातृका पूजा' की जाती है जो यथार्थतः शक्ति की ही उपासना है । विष्णु आदि देवों की पूजा में भी भींगे हुए चावल को पीसकर उससे विभिन्न प्रकार के तांत्रिक चक्रों को अंकित किया जाता है, जिसे यहां की भाषा में 'पीठार' और 'अड़िपन' कहा जाता है । बिना 'अड़िपन' के किसी देव की पूजा प्रारंभ नहीं होती है । यहां की यह प्रथा है कि आठ वर्ष की कुमारियोंको गौरी का स्वरूप मानकर मनौती के निमित्त उन्हें भोजन कराया जाता है और उस अवसर पर उस घर की, स्त्रियां उन्हें साष्टांग प्रणाम करती हैं । प्रत्येक पुरूष और स्त्री उपनयन एवं विवाह के पश्चात् अनिवार्यरूप से इष्ट मंत्र लेते हैं । यह मंत्र एकाक्षर होता है जिसकी अधिष्ठात्री विभिन्न देवियां

----

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़ पृ. ४११

२. वही पृ. ४१२

होती हैं । इसके अतिरिक्त कुछ व्यावहारिक विश्वासों की नींव भी तांत्रिक पद्धति पर आधारित है । विवाह के अवसर पर महिलाएं एक प्रकार के गीत गाती हैं जिसे 'जोग' कहा जाता है । ऐसा विश्वास है कि इस गीत के प्रभाव से नव विवाहित युगल प्रेमियों के परस्पर आकर्षण में वृद्धि होती है । उपर्युक्त तथ्यों से प्रकट है कि इस प्रदेश में तांत्रिक शक्ति-साधना का विशेष महत्व है ।

यद्यपि शैवमत से ही शाक्तमत उद्भूत हुआ है, किन्तु दक्षिणाचार एवं वामाचार, इन दो मार्गों के कारण अंगांगी में सैद्धान्तिक अन्तर आ गये हैं । किन्तु मिथिला में कालान्तर में वामाचार का अधिक प्राबल्य हो गया ।[१] पंचमकारों से मत्स्य और मांस का निकृष्टतम भोग आज भी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं । उपर्युक्त विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पंचदेवोपासक होते हुए भी इस प्रदेश का प्रचलित धर्म स्मार्त शाक्त है ।

इस प्रदेश की भूमि विद्वत्ता के लिये इतनी उर्वरा है कि पूर्व निर्दिष्ट विद्वानों के अतिरिक्त यहां अनेक विदुषियां भी हो गयी हैं । गार्गी और मैत्रेयी के सम्वादों से छान्दोग्य, बृहदारण्यकादि उपनिषद आलोकित हैं । भारती मण्डन मिश्र एवं शंकराचार्य के मध्य होनेवाले शास्त्रार्थ में निर्णायिका बनी थीं जो इतिहास प्रसिद्ध घटना है । पन्द्रहवीं-सोलहवी शताब्दी में भी अनेक विदुषियां हुई हैं जिन्होंने दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में योगदान दिया है । लक्ष्मिादेवीने न्याय-वैशेषिक दर्शन पर 'पदार्थ चन्द्र' ग्रंथ की रचना की । लखिमादेवी, विश्वास देवी और चन्द्रकलादेवी की पटुता साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय थी ।[२] इस प्रकार मिथिला केवल दर्शन शास्त्र का ही नहीं, अपितु

----

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़ पृ. ५२१

२. बिहार थ्रु द एजेज़ पृ. ४१४

साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष आदि विषयों का भी केन्द्र था। जनश्रुति के अनुसार उदयनाचार्यने गर्जना के स्वर में कहा था कि मिथिला प्रदेश दर्शन और व्याकरण शास्त्रों के लिये मानदंड के रूप में स्थित है, ये दोनों शास्त्र यहां के विद्वानों के पदचिन्हों का अनुसरण करते हैं। सूर्य के उदय से दिशा का ज्ञान होता है, वे स्वयं दिशा के अधीन नहीं हैं।[१]

<u>साहित्य और संगीत की परम्परा</u> -------- जैसा कि पूर्ववर्ती विवेचन से प्रकट है कि संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं की धारा इस प्रदेश में ब्राह्मणकाल से ही अविच्छिन्न रूप में प्रवहमान रही है। यहां के विद्वानों को निरीश्वर वादियों का सामना करना था, अत: संस्कृत भाषा उसके लिये उपर्युक्त अस्त्र सिद्ध हुई। इस देववाणी के प्रति अत्यधिक मोह के कारण यहां के विद्वानों में कट्टरवादिता आ गयी और वे संस्कृतेतर भाषा में अपनी रचना प्रस्तुत करने में हीनता का अनुभव करने लगे। सर्वप्रथम ज्योतिरीश्वरने ही अपनी रचनाओं में मैथिली को गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कर उसके विकास का मार्ग प्रशस्त किया। उमापति उपाध्यायने भी इस पथ का अनुसरण किया किन्तु इस समय तक मैथिली को पूर्णरूपेण गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हो सका था। कवि कंठहार विद्यापति के 'देसिल बयना' के प्रयोग से इसका गौरव-प्रकाश चारों दिशाओं में प्रकीर्ण होने लगा। इनके द्वारा प्रसारित विकास की किरण विभिन्न उत्सों से प्रभाव एवं प्रेरणा ग्रहण करती हुई अपने विविध रूपों में अविच्छिन्न रूप में आलोकित कर रही है। आधुनिक युग में इस भाषा में महाकाव्य, खंडकाव्य, चम्पू, नाटक, निबन्ध, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं पर तीव्रगति से कृतियां प्रस्तुत की जा रही हैं। हास्य-व्यंग्य के छींटे, सुकोमल भावों से गुंफित माधुर्य-प्रसाद गुणयुक्त कोमलकान्त पदावली इन विधाओं की निजी विशेषताएं है।

----

१. वयमिह पद विद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा,
यदि पथि विपथे वा वर्तयाम: स पंथा।
उदयति दिशि यस्यां भानुमान सैव पूर्वा,
नहि तरणिरुदिते दिग् पराधीन वृत्ति: ॥

मिथिला प्रदेश की सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक सुदृढ़ परम्परा के अतिरिक्त, कर्णाट वंश के राजा नान्यदेव के समय से यहां की संगीत परम्परा का भी सुव्यवस्थित इतिहास प्राप्त होता है। इनके दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय प्राप्त होता था। कहा जाता है कि ये स्वयं भी एक अच्छे संगीतज्ञ थे और इन्होंने शास्त्रीय पद्धति पर अनेक राग-रागिनियों को विकसित भी किया। संगीत विषय पर इन का ग्रंथ आज भी भंडारकर प्राच्य विदया मंदिर, पूना में सुरक्षित है।[१] कर्णाट वंश के अंतिम राजा हरिसिंह देव के दरबार के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ ज्योतिरीश्वर ने अपने ग्रंथ वर्णरत्नाकर में विभिन्न 'राग-रागिनी, नृत, ताल, लय, गायन, वादन और इनके दोषों का बड़ी सूक्ष्मता के साथ वर्णन प्रस्तुत किया है। इनके पश्चात् सत्तरहवीं शताब्दी के लोचन कविने भी "राग तरंगिणि" में उपर्युक्त विविध विषयों की विवेचना करते हुए उनके विकास के मार्ग को विस्तृत किया है।[2] इसकाल का मिथिला प्रदेश संगीत का केन्द्र था जहां से सम्पूर्ण बिहार में प्रकाश-किरण प्रकीर्ण होती थी। यहां के संगीतज्ञों ने बिहार के अतिरिक्त त्रिपुरा, बंगाल, उत्तर प्रदेश और नेपाल में भी लोकप्रियता अर्जित कर ली थी। इन प्रदेशों में यहां के संगीतज्ञ समय समय पर विशेषज्ञ के रूप में आदर के साथ आमंत्रित किये जाते थे।[3] इसके पश्चात् विधर्मियों के आक्रमण से इस सुविकसित परम्परा के मार्ग में गतिरोध ही नहीं उत्पन्न होता अपितु इसका स्रोत सूख-सा जाता है। आज के मिथिला प्रदेश में शास्त्रीय संगीत का सुव्यवस्थित रूप दृष्टिगोचर नहीं होता है, केवल मैथिल ललनाओं के सुमधुर कंठ से शुभप्रसंगो पर गाये जाने वाले गीतों में ही इस परम्परा के अवशिष्ट रूपों को लक्ष्य किया जा सकता है।

---

१. देखिये, बिहार थ्रू द एजेज़ पृ. ४६७

२. वही पृ. ४६८

३. वही

उपर्युक्त विभिन्न विषयों के संक्षिप्त विवरणों से प्रकट है कि प्राचीनकाल से ही इस प्रदेश की सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक परम्परा सुदृढ़, सुविकसित एवं गौरवमय रही है । इन्हीं तथ्यों को लक्ष्य कर डा. मिश्रने [१] उपयुक्त ही कहा है कि इन ठोस परम्पराओं के फलक पर यहां का मस्तिष्क साहित्य एवं संगीत के सर्जन तथा विकास में सतत् उर्वरा सिद्ध हुआ है । दृश्य और श्रव्य काव्य को ककुद-स्थान प्राप्त करने में उसे यहां के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन से प्रेरणा प्राप्त होती रही है ।

मैथिली एवं हिन्दी के साथ उसका संबंध --------

मैथिली और हिन्दी का क्या संबंध है ? क्या मैथिली एक स्वतंत्र भाषा है ? या हिन्दी की एक उपभाषा मात्र ? भाषा और बोलियों में क्या संबंध है ? इन अनेक प्रश्नों का उत्तर देना कठिन अवश्य हो गया है, क्यों कि अंग्रेजोंने राजनीतिक भेद नीति के साथ ही भाषा संबंधी भेद नीति की भी नींव डाल दी जिस से यह समस्या उलझ गयी है । एक ओर तो हिन्दी के विद्वान् बिहार की भाषाओं को हिन्दी क्षेत्र के अन्तर्गत रखकर विदयापति और उनसे पूर्व के चर्यापदों और दोहा कोषों की विवेचना करते हुए इनसे ही हिन्दी का विकास मानते हैं, वहीं दूसरी ओर डा. उमेश मिश्र,[२] डा. जयकान्त मिश्र[३] आदि मैथिल विद्वान्, भोजपुरी भाषा को तो धकिया कर हिन्दी की बोलियों में समाविष्ट कर देते हैं और मैथिली को स्वतंत्र भाषा स्वीकार करलेने के लिये आग्रह करते है । डा. उदयनारायण तिवारी[४]

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मै. लिट्. भाग १ पृ. ३८
२. मैथिली साहित्य परिषद् घोंघरडीहा (दरभंगा) का अध्यक्षीय भाषण तथा अन्य लेख ।
३. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर भाग १ पृ. अध्याय २
४. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ. ३०२ से आगे, तथा भोजपुरी भाषा और साहित्य - उपोद्घात पृ. १६६ से २२७

भोजपुरी भाषा को हिन्दी-क्षेत्र से पृथक्कर बंगाली तथा मैथिली के साथ मिलाना चाहते हैं । इन्होंने बिहार की तीनों बोलियों को बिहारी-भाषा की बोलियाँ स्वीकार करते हुए खेद प्रकट किया है कि इस भाषा का कोई भी साहित्य उपलब्ध नहीं है । साहित्य तो दरकिनार, किन्तु तथा-कथित भाषा का कहीं अस्तित्व भी नहीं है । अतएव कल्पित बिहारी - भाषा के साहित्य की कल्पना बंध्या-पुत्र के सदृश ही है । इन्हीं तथ्यों का निरीक्षण और परीक्षण आगे किया जा रहा है ।

यद्यपि अनेक भाषा वैज्ञानिकोंने बड़े विस्तार एवं सूक्ष्मता के साथ वैदिक भाषा, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के संबंध में विचार किया है तथापि इस स्थल पर अग्रिम विषय की क्रमबद्धता, उसके स्पष्टीकरण एवं विकास की रूपरेखा की पृष्ठ-भूमि के रूप में इनका संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है ।

आधुनिक भाषा तक पहुंचने के लिये, इसके विकास की तीन अवस्थाएं मानी गयी हैं ----- (१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (५०० ई. पूर्वतक), (२) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा (५०० ई. पूर्व से १००० ई. तक) और (३) आधुनिक अथवा नव्य भारतीय आर्य भाषा (१००० ई. के पश्चात्) ।[१] प्राचीन युग में वैदिक एवं लौकिक संस्कृत दोनों ही भाषाएं सम्मिलित हैं । यद्यपि वैदिक युग से पूर्व की भाषाओं की प्रामाणिक विकास-परम्परा उपलब्ध नहीं है ; अतएव ऋग्वेद की भाषा ; जो सर्वाधिक प्राचीन है, पर ही निर्भर रहना पड़ता है । कोई भी भाषा सर्वप्रथम बोली के रूप में विद्यमान रहती है और परिष्कृत तथा परिनिष्ठित होने पर ही वह साहित्यिक रूप धारण करती है । अतएव ऋग्वेद के सदृश ठोस और समृद्ध भाषा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इसकी पृष्ठ भूमि में अवश्य ही जन-भाषा की कोई न कोई सुदृढ़ परम्परा विद्यमान रही होगी ।

---

१. सामान्य भाषा विज्ञान (बाबूराम सक्सेना) - पृ. ३०७

कतिपय विद्वानों का मन्तव्य है कि ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना भिन्न-भिन्न देश एवं काल तथा विभिन्न ऋषियों द्वारा हुई ।[१] अत: इसकी भाषा में स्थान भेद पाया जाना अत्यन्त स्वाभाविक है । इसी स्थान भेद, कालभेद और समाज भेद के कारण भाषा में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है । इस परिवर्तन के मूल में भी विभिन्न संस्कृति - सभ्यताओं का मिश्रण और सामाजिक आवश्यकताएं विद्यमान रहती हैं । ब्राह्मण ग्रंथ, सूत्रग्रंथ तथा निरूक्तों को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन वैदिक संस्कृत में शनै: शनै: परिवर्तन होना प्रारंभ हो गया था । इस परिवर्तन के कारण वह भाषा विभिन्न स्त्रोतों से प्रवाहित होने लगी जिनको एक धारा में केन्द्रित करने का प्रयत्न निरूक्तकारोंने किया ।[२] किन्तु उसकी तीव्रगति क्षणिक स्थिर होकर पुन: उसी रूप में प्रवाहित होने लगी ।

महर्षि पाणिनिने भाषा की उन विविध धाराओं को पुन: केन्द्रित करने का सत्प्रयास किया । इन्होंने वैदिक वाङ्मय की भाषा को छन्दस् की संज्ञा देकर उसे अपौरूषेय मान लिया और उसी भाषा में कुछ परिष्कार एवं परिवर्तन कर भाषा का एक नया रूप उपस्थित किया जिसे लौकिक संस्कृत के नाम से अभिहित किया गया । पाणिनि की इस सुदृढ़ परिष्कृत भाषा का आधार संभवत: जन-भाषाएं ही रही होंगी ।[३] इस नयी भाषा को इन्होंने कुछ परिमित सूत्रों में ही इस प्रकार से नियमबद्ध कर दिया कि पुन: उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन असंभव-सा हो गया ।

यह लौकिक संस्कृत बहुत समय तक समाज के परस्पर विचार-विनिमय की भाषा रही । आगे चलकर "प्राच्य प्रभाव के कारण कुछ सदियों तक

---

१. वही पृ.३०८ तथा विलसन फिलोलोजिकल लेक्चर्स बाय सर आर.जी.भंडारकर पृ.२०

२. वही पृ.२१

३. विलसन फिलोलोजिकल लेक्चर्स (सर आर.जी.भंडारकर) पृ.२१

संस्कृत का प्रभाव सीमित हो गया, परन्तु मौर्य साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर संस्कृत भाषाने फिर अपना आधिपत्य जमालिया। ------- अब से बराबर प्राकृतों के प्रश्रय पाने तक संस्कृत हिन्दू राज्यों की राज-भाषा रही।"[१] अष्टाध्यायी के कतिपय सूत्रों, व्यापारिक और बोल-चाल के शब्दों के परीक्षण तथा परवर्ती भाष्यकारों की व्याख्याओं के अवलोकन के पश्चात् कतिपय विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि संस्कृत केवल राज-भाषा ही नहीं अपितु जन-भाषा भी थी। डा. राम विलास शर्मा का कथन है कि संस्कृत निसंदिग्ध रूप से जन-भाषा तो थी ही पर उस वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में आधुनिक भाषाओं की अनेक विशेषताएं भी विद्यमान थीं। "भाषा की ध्वनि-प्रकृति के अध्ययन से -- एक ही भाषा में विभिन्न ध्वनि-प्रकृतियों के सहअस्तित्व और उनसे जनपदीय बोलियों की ध्वनि-प्रकृति के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि संस्कृत जन साधारण की भाषा थी और उसके वैदिक एवं लौकिक रूप गठन के समय अवधी आदि भाषाओं की अनेक वर्तमान विशेषताएं विद्यमान थीं।"[२] जन-बोली रहने पर भी नियमों में आबद्ध रहने के कारण यह भाषा अपरिवर्तनीय-सी बनी रही।

जैसा कि कहा जा चुका है कि किसी भी परिनिष्ठित भाषा अथवा बोली में विभिन्न संस्कृति-सभ्यता, विचार और भावों के आदान-प्रदान से विकास एवं परिवर्तन होता ही रहता है। विकास के इस पथ पर भाषा बहुत आगे बढ़ जाती है और दूसरी ओर बोली भी स्वाभाविक रूप से लोक व्यवहार की परम्परा के माध्यम से स्वतंत्र विकास की दिशा में आगे बढ़ती जाती है। इसके परिणाम स्वरूप उक्त भाषा और बोली के विकासशील रूपों में बहुत अन्तर आ जाता है और कालानुक्रम से वह

---

१. सामान्य भाषा विज्ञान - पृ. ३०६

२. भाषा और समाज (डा. राम विलास शर्मा) - पृ. ३६

बढ़ता ही जाता है । अतएव जब अति परिनिष्ठता के कारण लौकिक संस्कृत एवं जन-बोली में पर्याप्त अन्तर आ गया तब स्वाभाविक रूप से उसका जन-सम्पर्क छूटता-सा गया । अतएव जब "बुद्ध के दो ब्राह्मण शिष्योंने यह प्रस्ताव रखा कि तथागत के उपदेश को प्राचीन भाषा 'छान्दस्', अर्थात् सुशिक्षितों की साधु भाषा में अनूदित कर लिया जाय तो बुद्धने इसे अस्वीकार करते हुए साधारण मानव की सभी बोलियों को ही अपने उपदेश का माध्यम रखा । उनका यही अनुरोध रहा कि समस्त जन उनके उपदेश को "अपनी मातृभाषा" में ही ग्रहण करें ।"[१]

बुद्ध के समय तक प्रादेशिक बोलियों के, उदीच्य, मध्यदेशीय तथा प्राच्य- ये तीन भेद हो गये थे ।[२] तथागत के अनुयायियोंने भी अपने धर्म को सुगम, सर्वजन सुलभ तथा उसके प्रचार और प्रसार के लिए प्रचलित बोलियों को ही अपनाया जिस बोली में धर्मोपदेश दिया गया वह प्राच्य थी, जिसे कालान्तर में पालि के नाम से जाना जाने लगा । "पालि भाषा का मगध प्रदेश से कोई संबंध नहीं है, यद्यपि इसका एक वैकल्पिक नाम मागधी भाषा है । पालि वास्तव में शौरसेनी से संबंधित एक मध्यदेशीय भाषा है ।"[३] बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र मगध था, अत: वहां की भाषा पर इसका गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है । डा. चटर्जी के उपर्युक्त मत का समर्थन डा. धीरेन्द्र वर्मा[४] एवं डा. बाबूराम सक्सेनाने[५] भी किया है ।

बौद्ध एवं जैन धर्मोपदेशकों के कारण पालि की विभिन्न बोलियों के साहित्यिक प्रयोग में बहुत सहायता मिली और कुछ ही समयों में इन दोनों धर्मों के प्रभाव के कारण विभिन्न प्रादेशिक बोलियों में साहित्य खड़ा हो गया ।[६] इस साहित्यिकता के समावेश हो जाने से इस भाषा का भी रूप

---

१. भारतीय- आर्य भाषा और हिन्दी (द्वितीय संस्करण) - पृ. ७६
२. वही पृ. ७५
३. वही पृ. १०६
४. हिन्दी भाषा और लिपि - पृ. २५
५. सामान्य भाषा विज्ञान - पृ. ३११
६. भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी - पृ. ७६

स्थिर हो गया और जन-सम्पर्क कम होता गया। अशोक के समय तक इस भाषा में उपदेशादि दिया जाना संभवत: रुक-सा गया क्योंकि उस समय के कुछ शिला लेख प्राप्त हुए हैं जिनकी भाषा पालि तथा परवर्ती प्राकृत दोनों से भिन्न हैं। अतएव इस काल की प्राकृत भाषा को अशोक की प्राकृत कहा जाता है।[१] लोगों की बोलियों में सदैव परिवर्तन होता रहता है, अत: अशोक की धर्म लिपियों की भाषा ही कालान्तर में प्राकृत के नाम से प्रसिद्ध हुई।[२] एक अन्य मत यह भी है कि वैदिककाल की विभिन्न प्रादेशिक बोलियां ही विकसित होती हुई आधुनिक भाषा तक आयी हैं। प्राचीन वैदिक कालीन बोलियां प्रथम तो प्राकृत के रूप में विकसित हुई और पुन: उन में विकार तथा परिवर्तन आने के कारण उन्होंने ही आधुनिक विभिन्न आर्य भाषाओं का रूप धारण कर लिया। अतएव यह कहना समीचीन नहीं है कि प्राकृत अथवा आधुनिक भाषाएं संस्कृत से उद्भूत हुई हैं ; यही कहा जा सकता है कि संस्कृत एवं प्राकृत दोनों का ही उद्गम स्थान एक है।[३]

एक अन्य तथ्य यह भी है कि साहित्यिकता के कारण पालिका जन सम्पर्क छूट-सा गया था, अत: सामयिक धर्म प्रवर्तकों एवं रचनाकारों को विवश होकर प्रचलित जन-बोलियों का ही आश्रय लेना पड़ा होगा। उस समय के शिलालेखों एवं धर्म लिपियों के आधार पर प्रादेशिक बोलियों के पूर्वी, पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तरी भेद आ गये थे। इन्हीं के आधार पर स्थानीय प्राकृतें विकसित हुई। "इसके अतिरिक्त बोलियों के कृत्रिम या नाटकीय रूप - शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री, आवन्ती, पैशाची आदि -- भी थे।"[४] नाटकों में संस्कृत के समानान्तर पद प्राप्ति के

---

१. हिन्दी भाषा और लिपि पृ. २५ तथा सामान्य भाषा विज्ञान पृ. ३१३
२. हिन्दी भाषा और लिपि - पृ. २५
३. इम्पीरियल गज़ेटीयर ऑफ इंडिया - वॉल्यूम १ पृ. ३५८
४. भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी - पृ. १०६

कारण परवर्ती प्राकृत - वैयाकरणोंने भी इसके रूप को स्थिर कर दिया, जिससे बोल चाल के रूपों में एवं साहित्यिक प्राकृत में पर्याप्त अन्तर आ गया । अतएव इस साहित्यिक प्राकृत के आधार पर उस समय की बोलियों के रूपों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता । स्थान भेद के कारण इस प्राकृत को विद्वानोंने तीन भागों में विभक्त किया है जो महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी के नाम से प्रसिद्ध हैं । शौरसेनी तथा मागधी के मध्य-भू भाग की भाषा मिश्रित थी, इसलिये उसे अर्ध मागधी की संज्ञा दी गयी । प्राकृत के संबंध में जार्ज ग्रियर्सन महोदयने कहा है कि -------

"जब प्राकृत में भी ग्रंथ रचना होने लगी, और कई पीढ़ियों तक वह साहित्यिक भाषा के रूप में अपरिवर्तित गति से चलती रही तो उसका रूप भी बहुत कुछ स्थिर हो गया । ----------- बोल चाल की जन भाषा भी अपने प्रगति पथ पर थी । इस में जो रचनाएं हुईं वे विद्वानेतरों के लिये ही । इस में शब्द समूह तथा वाक्य रचना आदि साहित्यिक प्राकृत के विपरीत जन-भाषा से उधार लिये गये । इन प्राकृत रचनाओं में व्यवहृत देश्य (देशी अथवा स्थानीय) शब्द प्रामाणिकता की कोटि में न आ सके और नियमानुकूल साहित्यिक प्राकृत में उनके लिये कोई स्थान न था । ये शब्द स्थिर भी न रह सके क्योंकि स्थानीय भाषाओं में परिवर्तन होने के कारण धीरे धीरे इनके अर्थ में भी परिवर्तन आता गया । अर्थ परिवर्तन के साथ-साथ ऐसे शब्द प्राय: अप्रचलित होते जाते थे और उनके स्थान पर अन्य शब्द व्यवहृत होने लगते थे । इसका परिणाम यह हुआ कि समय की प्रगति के साथ साथ ये प्रबंध काव्य जनता के लिए दुर्बोध होते गये और पुन: उन्हें जनता की भाषा में अनूदित कर के उन में देशी शब्द भरे गये । इस प्रकार के ग्रंथो की स्थानीय प्राकृत को अपभ्रंश अथवा अपभ्रष्ट कहा गया और स्थान के अनुसार इनके रूपों में भी पर्याप्त अन्तर था ।"[१]

---

१. भारतका भाषा सर्वेक्षण (अनु. डा. उदय नारायण तिवारी) भूमिका पृ. ३२६

सुविधा की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि १००० ई. के लगभग यह प्राकृत भाषा लोक व्यवहार से रहित हो गयी थी और उसके स्थान पर अपभ्रंशने अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लिया था । "इस भाषा के लेखक तत्कालीन बोली के आधार पर कुछ आवश्यक परिवर्तन करके साहित्यिक प्राकृतों को ही अपभ्रंश बना लिया करते थे । अतएव साहित्यिक प्राकृतों के समान ही अपभ्रंशों से भी लोगों को तत्कालीन असली बोली का ठीक पता नहीं चल सकता ।"[१] प्राकृत के आधार पर विकसित हुई इस भाषा के भी, स्थानीय भेद के कारण, सुविधा की दृष्टि से प्रधानत: तीन भेद किये गये हैं - अर्थात् महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी । पूर्वी तथा पश्चिमी प्राकृतों के बीच की प्राकृत अर्ध मागधी से अर्धमागधी अपभ्रंश विकसित हुई ।

भाषाविदों का मन्तव्य है कि इन्हीं अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं विकसित हुईं । मागधी अपभ्रंश से बिहार की तीनों बोलियां, बंगाली तथा आसामी विकसित हुई तथा अर्ध मागधी अपभ्रंश से अवधी, बघेली, छत्तीस गढ़ी आदि भाषाएं उद्भूत हुईं ।[२] किन्तु कुछ ही सामान्य समानताओं को देखकर - जो अनेकानेक सम्पर्क के कारण आ जाती हैं - यह नहीं कहा जा सकता कि किसी भाषा विशेष से एक या अनेक भाषाएं उद्भूत हुई हैं । "सर्वनामों की तथा भाषा के अन्य तत्वों की समता का कारण भाषाओं का मिश्रण हो सकता है ; एक भाषा से दूसरी भाषा की उत्पत्ति मानाना आवश्यक नहीं है ।"[३] अतएव "यह कहना ज्यादा सही है कि प्राकृत - अपभ्रंश के हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में कुछ तत्व आ गये हैं ; यह कहना गलत है कि प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से आधुनिक भाषाओं की उत्पत्ति हुई ।"[४]

---

१. हिन्दी भाषा और लिपि -- पृ.२६
२. भोजपुरी भाषा और साहित्य (उपोद्घात) पृ.७०-७४
३. भाषा और समाज - पृ.१३३
४. वही पृ. २२८

भाषा के विकास के उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण उत्स भी इसके विकास की दिशा निर्दिष्ट करता है, जिसका आधार सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक आदि परिस्थितियां एवं तज्जन्य आवश्यकताएं हैं ।[१] इन परिस्थितियों के कारण अनेक लघु जातियां शांतिपूर्ण (अथवा अशांतिपूर्ण) सह अस्तित्व के बल पर एक महाजाति का निर्माण करती हैं और अपनी बोलियों में से किसी एक बोली को, जिसमें सभी बोलियों के सामान्य तत्व पाये जाते हैं, आपसी व्यवहार की भाषा के रूप में स्वीकार कर लेती हैं । इस प्रकार प्राचीन लघु जनपदों के विलयन से महाप्रदेश का निर्माण होता है और उन लघु जनपदों की बोलियों के विलियन से एक भाषा का विकास होता है ।[२] महाजातियोंका आर्थिक जीवन वितरण और उत्पादन के नये पूंजीवादी संबंधो पर निर्भर होता है, और उसमें वर्ण व्यवस्था विशृंखल होकर नये वर्गों को स्थान देती है । जन से महाजाति तक के परिवर्तन की धुरी आर्थिक जीवन है । इसी से जन संगठित होकर संघ बनाते हैं : विभिन्न जनपद सिमटकर लघु जातियों का विस्तृत प्रदेश बनाते हैं ; विभिन्न बोलियां बोलनेवाले एक दूसरे के निकट आते हैं और बोलियों के बीच व्यापक व्यवहार के लिये भाषाओं का अभ्युदय होता है ।[३]

सामंतवादी सत्ता व्यापार - प्रसार और उसकी उन्नति के लिये पर्याप्त प्रयत्न करती है । मुगलशासन में आकर उत्तर भारतका अधिकांश भू भाग एक राज्यसत्ता के अन्तर्गत आ गये । इस साम्राज्य का मेरूदंड हिन्दी-भाषा-प्रदेश था । हिन्दी भाषी महाजाति के निर्माण में मुगल राज्यसत्ता की एक महत्वपूर्ण भूमिका है । उस समय - व्यापार का मुख्य केन्द्र दिल्ली थी, अत: उसके आस-पास की भाषा खड़ी बोली - हिन्दी - उर्दू -

----

१. डा. राम विलास शर्मा की पुस्तक भाषा और समाज के आधार पर यह तथ्य प्रस्तुत किया जा रहा है ।

२. भाषा और समाज पृ. २४०

३. वही पृ. २४४

सामान्य भाषा के रूप में स्वीकृत हो गयी । उसी समय से "हिन्दुस्तान शब्द का अर्थ पंजाब तथा बंगाल के मध्य के भू-भाग से लिया जाता है । तात्पर्य यह कि इस भू-भाग के लोगोंने मिलकर एक हिन्दी महाजाति का निर्माण किया । इससे यह सिद्ध हुआ कि 'जातीय भाषा के प्रसार का श्रेय पहले व्यापार को है । --------- लंदन, इंग्लैण्ड का प्रमुख व्यापारिक और औदयोगिक केन्द्र था, अतएव वहीं की बोली के आधार पर बोलचाल और साहित्यिक अंग्रेजी भाषा का विकास हुआ ।"[१] किन्तु "इस जातिय विकास के प्रवाह में साधारणतः वही लोग सम्मिलित होते हैं जो भाषा और संस्कृति में एक दूसरे के निकट होते हैं । अतएव सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भाषागत कारण इससे अधिक शक्तिशाली सिद्ध हाते हैं ।"[२]

बिहार का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भाषायिक एवं राजनीतिक संबंध जितना पश्चिम से रहा है उतना पूरब से नहीं । शतपथ ब्राह्मण के उल्लेख से प्रकट है कि माधव देव वर्तमान उत्तर प्रदेश की सीमाओं को पार करते हुए वहां गये और वहां एक अलग जनपद का भी उन्होंने निर्माण किया । अतः वे इस दिशा की सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशेषताओं को भी अवश्य ही ले गये होंगे । पूर्ववर्ती पृष्ठों पर यह बताया जा चुका है कि किस प्रकार उपनिषद् काल में विदेह जनपद को काशी और कोसल जनपदों में विलयन कर लिया जाता था, इसके साथ ही विभिन्न ग्रंथों के आधार पर हम यह भी देख चुके हैं कि रामायण, पुराण एवं बौद्धकाल में यह जनपद सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक रूप में सम्बद्ध रहा है ।

बौद्धकालीन मिथिला का औदयोगिक एवं व्यापारिक संबंध वाराणसी, कौशाम्बी, श्रावस्ती और ताम्रलिप्ति से अधिक था । इन नगरों से यातायात की सुविधा के लिये जलमार्ग के अतिरिक्त कच्ची सड़के भी थीं । इस प्रदेश में

----

१. भाषा और समाज पृ.२६६

२. भाषा त्रैमासिक में डा.राजनारायण मौर्य का लेख पृ.४१

वाराणसी से रेशम का आयात पर्याप्त मात्रा में होता था ।[१] मौर्य काल में उत्तरा पथ के निर्माण हो जाने से साकेत, वाराणसी आदि नगरों के अतिरिक्त उज्जैन से भी व्यापारिक और औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित हो गया ।[२] इन तथ्यों से प्रकट है कि बिहार प्रदेश अति प्राचीन काल से ही पश्चिमाभिमुख रहा है ।

मुगलकाल के प्रारंभ में इस प्रदेश को बंगाल के साथ सम्मिलित कर दिया गया । इसका व्यापारिक एवं औद्योगिक संबंध पूर्वी भारत तक ही सीमित हो गया ।[3] कालान्तर में इसे उड़ीसा के साथ भी सम्मिलित किया गया । इन राजनीतिक ऊथल पुथल के होते रहने पर भी यह प्रदेश कभी भी सम्पूर्ण रूप से पूर्वाभिमुख नहीं हुआ । इसका प्रथम कारण तो यह है कि इस प्रदेश का संबंध प्राचीन काल से ही पश्चिम से रहा था और यहां के लघु जनपदोंने महाजाति के विकास में योगदान दिया था । अत: इस सुदृढ़ परम्परा का उल्लंघन इस प्रदेश के लिये सरल नहीं था । दूसरा कारण यह था कि यहां का सांस्कृतिक एवं भाषागत संबंध पश्चिम से ही था । हम देख चुके हैं कि जातीय विकास के प्रवाह में सम्मिलित होने के लिये राजनीतिक, व्यापारिक या औद्योगिक कारण उतने शक्तिशाली सिद्ध नहीं होते जितने कि सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं भाषागत कारण । अत: यह स्वाभाविक ही है कि इस प्रदेश का जातीय विकास पश्चिमानुरूप ही होता ।

एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि मिथिला और वाराणसी प्राचीनकाल से ही शास्त्रज्ञान के केन्द्र रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप इन दोनों विद्या और संस्कृति के केन्द्रों का पारस्परिक आदान-प्रदान होता रहा । अतएव इन दोनों की संस्कृति, सभ्यता और परम्पराओं में बराबर

---

१. बिहार थ्रू द एजेज़ - पृ.१८०-८१
२. वही पृ .२४४
३. वही पृ. ४६०

मिश्रण होता रहा । इन संबंधों के कारण "बिहारी तथा हिन्दी में और कोई भाषागत संबंध न होता, केवल ये ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंध ही होते, तो भी संभावना यही होती कि शताब्दियों के दृढ़ सम्पर्क के कारण हिन्दी और बिहार के भाषा-भाषी घुल मिलकर एक ही जाति के अंग बन जायें ।"[१]

पूर्व निर्दिष्ट सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आदि संबंधो के अतिरिक्त शताब्दियों से बिहार और उत्तर प्रदेश के बीच भाषागत संबंध भी दृढ़ से दृढ़तम होता चला आया है । ईसा पूर्व से ही सम्पूर्ण उत्तर भारत -- पंजाब और बंगाल के मध्यका भू भाग ---- में विभिन्न बोलियों से युक्त एक ही सामान्य भाषा का व्यवहार होता आया है । ग्रियर्सन महोदय के शब्दों में "अशोक (२५० ई.पूर्व) के शिला लेखों तथा महर्षि पतंजलि - (१५० ई.पूर्व) के ग्रंथों से यह ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में भी उत्तर भारत में आर्यों की विविध बोलियों से युक्त एक ही भाषा प्रचलित थी । जन साधारण की नित्य व्यवहार की इस भाषा का क्रमागत विकास वस्तुत: वैदिक युग की बोलचाल की भाषा से हुआ था ।"[२]

प्राकृत के युग में आकर सम्पूर्ण उत्तर भारत में शौरसेनी का ही प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । पश्चात् यही शौरसेनी राजभाषा के रूप में स्वीकृत हो गयी । पं. शिवनन्दन ठाकुर के शब्दों में ------ "मागधी प्रान्तीय भाषा थी और शौरसेनी देश भाषा तथा राजभाषा । इसलिये मागधी से अवहट्ट की उत्पत्ति हुई और उसके ऊपर शौरसेनी का गहरा प्रभाव पड़ा ।"[३] आपने शौरसेनी को मागधी की जननी स्वीकार करते हुए लिखा है --- "प्राकृत व्याकरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राकृत

----

१. भाषा और समाज - पृ.३७०

२. भारत का भाषा सर्वेक्षण (अनु.डा.उदयनारायण तिवारी)
भूमिका - पृ.२२४

३. महाकवि विद्यापति - पृ.२५२

युग में शौरसेनी तथा मागधी में समान शब्दों का व्यवहार होता था तथा दोनों में अनेक समानताएं थीं । हेमचन्द्रने मागधी की विशेषताएं बतलाकर स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि इन विशेषताओं के अतिरिक्त शौरसेनी तथा मागधी में समानता है । वररुचिने भी शौरसेनी को मागधी की जननी मानकर इस पक्ष का समर्थन किया है ।"[१]

इसके पश्चात् अपभ्रंश का युग आता है । इस समय तक राजपूतों का साम्राज्य पूर्णरूप से प्रतिष्ठित हो चुका था । सामन्तवादी व्यवस्था के कारण इन की भाषा - शौरसेनी अपभ्रंश - राजभाषा के रूप में स्वीकृत होकर सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रसार पा गयी । इस भाषा के प्रसार में भाट - चारणों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । ये लोग विभिन्न प्रान्तों में बसने लगे और वहां के राज दरबारों में प्रवेश पाने लगे । अन्य प्रान्तों के लोग भी शौरसेनी भाषा - भाषी प्रदेशों के राजदरबारों में प्रवेश करते और स्वाभाविक रूप से उक्त दरबार में प्रतिष्ठित भाषा सीखते गये । इन कारणों से शौरसेनी अपभ्रंश का साम्राज्य स्थापित हो गया । प्रदेशगत भिन्नता के कारण इस में स्वर विज्ञान तथा वर्ण विन्यास की विविधता दिखायी देने लगी और इसी कारण इसके अलग अलग नाम रख दिये गये । इस तथ्य को प्रकाशित करते हुए सुप्रसिद्ध भाषाविज्ञ डा.सुनीतिकुमार चटर्जीने लिखा है कि "अर्धमागधी तथा मागधीके क्षेत्रों में भी साहित्य में शौरसेनी का ही व्यवहार होता था । चौदहवीं शताब्दी के मैथिल कवि विद्यापतिने अपनी मातृभाषा मैथिली तथा अवहट्ट, जो शौरसेनी अपभ्रंश का अंतिम रूप था, में रचना की ।"[२] वैष्णव धर्म के प्रचार एवं प्रसार से इस क्षेत्र में ब्रजबुली तथा व्रजभाषा का प्रभाव किस रूप में था, उसके संबंध में आपने दूसरे स्थल पर लिखा है कि "विद्यापति के अवहट्ट में उस समय की

---

१. महाकवि विद्यापति - पृ.२०७

२. विस्तृत विवेचन के लिये दृष्टव्य द ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट ओफ बंगाली लैंग्वेज पृ.६१

प्राचीन वृजभाषा तथा मैथिली का संमिश्रण है । उसके ऊपर मैथिली स्वर विज्ञान तथा वर्ण विन्यास का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है ।"[१]

संबंधित यहां की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक परम्परा के साथ साथ भाषा के दृष्टिकोण से भी बिहार पश्चिम की जन भाषाओं से ही अधिक संबंधित रहा है, जिसे कि हम ऊपर दृष्टिगत कर चुके हैं । अधिक सूक्ष्मता से विचार करें तो "क्रिया या विशेषण में लिंग भेद पश्चिमी भाषाओं की विशेषता है और विद्यापति के कई पद ऐसे भी मिलते हैं जो संस्कृत में पुलिंग हैं किन्तु हिन्दी की तरह उनके पदों में स्त्री लिंग व्यवहृत हुए हैं ।"[२] इसके अतिरिक्त "विद्यापतिकी भाषा में हिन्दी के अकारान्त पुलिंग शब्दों की तरह सब शब्दों के दोनों वचनों में समान रूप होते हैं ।"[३]

जैसा कि उपर्युक्त विवरण से प्रकट है कि मध्य युग के बिहार में वृज भाषा का पर्याप्त आदर था ।[४] यह आदर केवल बिहार तक ही सीमित नहीं रहा अपितु नेपाल गये हुए मैथिलों में भी इस भाषा को उसी रूप में आदर प्राप्त हुआ । राज्याश्रित मैथिलोंने कतिपय नाटकों की रचना वृज, अवधी एवं खड़ी बोली मिश्रित मैथिली में की । इन नाटकों में कई स्थलों पर खड़ी बोली के आधुनिकतम रूप भी पाये जाते हैं । जगत् प्रकाशमल्ल (मृ. १६८२ ई.) के नाटक की भाषा उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करती है, जिसके लिये निम्नलिखित उदाहरण पर्याप्त होंगे -------

----

१. विस्तृत विवेचन के लिये दृष्टव्य द ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट ओफ बंगाली लैंग्वेज पृ. ११३-१४
२. महा कवि विद्यापति - पृ. १४
३. वही - पृ. १६
४. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - पृ. २६५

(१) रूकिमनीजि इह फूल तुम्हारे लायक, तुम्हारे संसर्ग सौं फूल बहुत सोभा पायो हय । इह फूल पार्वती, अदिति, इंद्राणी धरति हय । जो कछु तुम्हारे मनोरथ फूल सौं पुरण होयगो । आजि हौं जान्यो तुम कृष्णजी की बड़ी प्यारी, सवतिन सब जरि बरि रहैगी । आजि सत्यभामाजी तुम्हारी बड़ाई जानैगी ।[१]

(२) नारद ----- हे देवराज, तुमरे छोटे भैया देखनको द्वारिका गये हुते । एक फूल पारिजात कौं लए गए । त्यौं फूल तुम्हार भैया के दया । तुम्हार्‍यो भैयाने रूक्मिनी को दयो । पारिजात वृक्ष को दान विधि भले भांति कहई । हे बात सुनि सत्यभामा हठ किया जो हौं पारिजातक वृक्ष पाओ दान करो । तुम्हारे भैयाने कह्यो पारिजात वृक्ष आनि देहुगो । एसो अंगिकार कर्‍यो । ते निमित्त इहा हौं आए हौं । पारिजात वृक्ष कृपाकरि दीजिए ।[२]

(३) "हे जगदीश्वर, पानी कुशासन लीजिये ।"
"मुनीश्वर बैठिये ।"
"मुजिराज तुम्हारी बड़ाई है ।"[३]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि नेपाल के कतिपय मैथिली नाटकों में अवधी, ब्रज तथा खड़ी बोली के नवीनतम रूपों का संमिश्रण मैथिली के साथ किया गया है ।

आधुनिक काल में तो दोनों प्रदेशों का संबंध और भी दृढ़ हो गया है । आधुनिक मैथिली साहित्य की प्रत्येक विधा पर हिन्दी साहित्य का प्रभाव स्पष्टत: लक्षित होता है, जिसके साथ ही अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव भी हिन्दी के माध्यम से ही पड़ा है जो परवर्ती अध्यायों के विवेचन से प्रकट है ।

----

१. पारिजातहरण नाटक - पृ. १३

२. पारिजातहरण - पृ. २५

३. वही - पृ. १२-१३

व्याकरण, शब्द भंडार आदि का तुलनात्मक अध्ययन तो परवर्ती पृष्ठों पर किया ही जायेगा किन्तु यहां इतना कहना ही पर्याप्त है कि बिहार के देहातों के विदयालयों में भी शिक्षाका माध्यम हिन्दी है । विभिन्न शहरों में वित्तोपार्जन करनेवाले अधिकांश मैथिल अपने दैनन्दिन व्यवहार में हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं । जयनगर से दरभंगा तक जानेवाली गाड़ी में बैठे हुए यात्री परस्पर "देहाती हिन्दी" में ही बातचीत किया करते हैं । इन तथ्यों के पर्यालोचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शताब्दियों से बिहार और उत्तर प्रदेश का भाषागत संबंध अत्यन्त घनिष्ठ रहा है और अब ये एक प्रकार से एकही भाषा रूपी महाजाति के अभिन्न अंग-से बन गये हैं । मिथिला के अधिकांश विद्वान् हिन्दी में ही अपनी रचनाएं प्रस्तुत करते हैं जो कि उपर्युक्त अभिन्नता या भाषागत नैकट्य का परिचायक है । यह भी जातीय निर्माण की एक प्रक्रिया है । जिसे अचेतन अथवा अवचेतन मन से यहां के सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं, परन्तु चेतनावस्था में वे पूर्वाग्रही बन जाया करते हैं ।

उपर्युक्त भाषा-विकास के विभिन्न उत्सों एवं उनके संदर्भ में बिहारी भाषाओं के तथ्यों के विवेचन - विश्लेषण के पश्चात् अब केवल एक महत्वपूर्ण समस्या रहजाती है कि क्या मैथिली एक स्वतंत्र भाषा है या हिन्दी की एक उपभाषा मात्र ? इसके समाधान के लिए सर्वप्रथम भाषा और बोली में अंतर, उनका पारस्परिक संबंध तथा उनके भेदक तत्वों का समुचित परीक्षण अपेक्षित है ।

डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में - "बोलियां लहरों की तरह हैं । प्रत्येक लहर का दायरा दस-बारह कोस का हुआ । इन में जब कोई एक बोली भाषा बनकर बारह कोस की जगह बारह सौ कोस का दायरा घेर लेती है, तब वे बोलियां समाप्त नहीं हो जाती । भाषा के साथ शान्ति (या अशान्ति) पूर्ण सहअस्तित्व बना रहता है । बोली के

सीमित क्षेत्र से बाहर भाषा सामान्य सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवहार में काम आती हैं ; बोली अपने सीमित क्षेत्र में दैनिक जीवन के व्यवहार में प्रयुक्त होती है ।"[१] प्रसिद्ध विद्वान मेरिओपाई (Mariopei) ने इस अंतर को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि "बोली किसी भाषा का एक रूप है जो एक निश्चित भू भाग या भौगोलिक क्षेत्र में बोली जाती है और जिसमें उक्त भाषा के स्टैंडर्ड या साहित्यिक रूप में पर्याप्त अन्तर होता है । यह अन्तर उच्चारण, व्याकरणिय गठन और मुहावरों के प्रयोग में होता है ; जिस से उसका अलग अस्तित्व प्रकट होता है । किन्तु उक्त भाषा की अन्य बोलियों के साथ उस बोली का अधिक अंतर नहीं होता जिसके कारण वह एक अलग भाषा मान ली जाए ।"[२]

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि हम जिसे भाषा की संज्ञा देते हैं, वास्तव में वह अनेक बोलियों का समूह मात्र है । विभिन्न बोलियों की नींव पर ही भाषा के भव्य और विशाल भवन का निर्माण होता है, जिनमें से कोई एक बोली परिनिष्ठित होकर भाषा के पद पर आसीन हो जाती है । सुप्रसिद्ध भाषा- वैज्ञानिक ब्लूम फील्ड (Bloomfield) ने स्टैंडर्ड अंग्रेजी के विकास के उदाहरण द्वारा किसी बोली के भाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित अथवा उसके भाषागत रूप के विकसित होने की प्रक्रिया के मूल कारण रूप में विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को उत्तरदायी स्वीकार किया है, जिस से प्रकट है कि

---

१. भाषा और समाज - पृ.२०७

२. भाषा त्रैमासिक में डा.राजनारायण मौर्य का लेख

बोलियों में से कोई एक भाषा विकसित होकर परिनिष्ठित अथवा शिष्ट भाषा का पद प्राप्त कर लेती है।[१]

हिन्दी भाषा भी इसी प्रकार विभिन्न बोलियों का समूह है। प्रत्येक बोली अनेक उप बोलियों से संगठित रहती है। मैथिली कहने से केवल शुद्ध रूप में प्रयुक्त दरभंगा जिले की बोली ही नहीं ली जाती किन्तु इस से मुंगेर, पुर्णिया, भागलपुर, संथालपरगना, सहरसा और मुजफ्फरपुर की बोलियों का भी बोध होता है। इसका विश्लेषण ग्रियर्सन महोदयने इसप्रकार किया है ---- "दरभंगा जिले का दक्षिण भाग, मुंगेर के

---

1. Local differences of speech within an area have been never escaped notice, but their significance has only of late been appreciated. The eighteenth-century grammarians believed that the literary and upper-class standard language was older and more true a standard of reason than the local speech - forms, which were due to the ignorance and carelessness of common people. Nevertheless, one notice d, in time, that local dialects preserved one or another ancient feature which no longer existed in the standard language. --------------- The progress of historical linguistics showed that the standard language was by no means the oldest type, but had arisen, under particular historical conditions, from local dialects. Standard English, for instance, is the modern form not of literary, etc.
(Language by Leonard Bloomflield - P.321).

कुछ हिस्सों एवं भागलपुर की मैथिली दक्षिणी स्टैंडर्ड मैथिली कहलाती है। गंगा नदी के दक्षिण भाग की मैथिली पर मगही तथा बंगाली दोनों का प्रभाव है, जिसे "छिकाछिकी" बोली कहा जाता है। मुजफ्फरपुर का कुछ भाग, तथा चम्पारन की मैथिली पर पड़ोसी भोजपुरी का गहरा प्रभाव है जिस से यह जान लेना कठिन हो जाता है कि किस स्थान की बोली भोजपुरी है और किस स्थान की मैथिली। इसे पश्चिमी मैथिली कहा जा सकता है। मुजफ्फरपुर तथा चम्पारन जिले के मुसलमान अवधी, फारसी आदि मिश्रित भाषा का प्रयोग करते हैं। जिसे मुसलमानी या जोलाही बोली कहा जाता है। किन्तु यह बोली अपने शुद्धतम रूप में केवल दरभंगा के मुसलमानों के बीच ही व्यवहृत होती है।"[१] कहना न होगा कि इन उप बोलियों के सहारे ही मैथिली एक परिनिष्ठित बोली बन पायी है।

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों पर संकेत किया जा चुका है कि मैथिली का विकास मागधी अपभ्रंश से माना गया है और हिन्दी की अन्य सर्वमान्य बोलियों का अर्धमागधी तथा शौरसैनी अपभ्रंश से। अत: उत्पत्ति मूलक भेद के कारण कुछ विद्वानों ने मैथिली को स्वतंत्र भाषा मान लिया है।[२] किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। "भाषा और बोली एक ही परिवार की हो सकती है और दो परिवारों की भी। ब्रिटेन में वेल्श और गैलिक जर्मन परिवार की भाषाएं नहीं हैं; अंग्रेजी कैल्टिक परिवार की भाषा नहीं है। अब ब्रिटिश जाति की 'भाषा' है अंग्रेजी; वेल्श और गैलिक को बोली का ही दर्जा मिला।"[३]

----

१. लिग्विंस्टिक सर्वे ओफ इंडिया, वो. ५ पार्ट २ पृ. १३-१४

२. डा. उमेश मिश्र का अध्यक्षीय भाषण - मैथिली साहित्य परिषद् घोंघरडीहा (दरभंगा) अप्रैल १९३३, डा. जयकान्त मिश्र ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर वोल्यूम १, प्रो. वैदयनाथ झा का लेख - वैदेही अप्रैल १९६१ तथा अन्य विद्वानों का ग्रंथ।

३. भाषा और समाज पृ. ३६८

वास्तव में "दो भाषाओं का स्वतंत्र अस्तित्व मानने के लिये व्याकरण और मूल शब्द भंडार में अंतर होना चाहिए। यदि केवल ध्वनियों का अन्तर है तो हम कहेंगे कि भाषा एक ही है केवल उच्चारण की भिन्नता है।"[१]

जब विभिन्न भाषाएं सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों के कारण एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो साधारणत: अपने शब्दों को छोड़कर उनके पर्यायवाची शब्दों को दूसरी निकटवर्तिनी भाषाओं से गृहण कर लेती हैं। शब्द भंडार के अतिरिक्त, कुछ भाषाएं, व्याकरण के रूपों को भी अपना लेती हैं।"किन्तु व्याकरण या ध्वनियों के भेद से ही वे स्वतंत्र भाषाएं नहीं हो जातीं। देखना चाहिए उनके मूल शब्द भंडार की समानता को। इस मूल शब्द भंडार में सर्वनाम, संबंध सूचक शब्द और क्रियाएं सब से कम बदलती हैं।"[२] प्रत्यय, विभक्तियां, क्रिया, सर्वनाम तथा अव्यय, ये चारों तत्त्व किसी भी भाषा को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करते हैं।[३] इन्हीं व्याकरणीय तत्वों के आधार पर मैथिल विद्वानोंने मैथिली को स्वतंत्र भाषा के रूप में स्वीकार किया है।[४]

असंदिग्ध रूप से मैथिली एवं हिन्दी में अनेक विभिन्नताएं हैं, किन्तु ऐसी विभिन्नता अवधी और बृज में भी पायी जाती है। अतएव व्याकरण और शब्द भंडार की तुलना कर के देखना यह चाहिए कि समानताओं तथा असमानताओं में से किस की मात्रा अधिक है। यह विशेषरूप से उल्लेखनीय है

---

१. भाषा और समाज पृ. १४६

२. वही पृ. ७१

३. भारतीय भाषा विज्ञान (पं. किशोरीदास वाजपेयी) पृ. १६

४. डा. उमेश मिश्र का अध्यक्षीय भाषण - वही डा. जयकान्त मिश्र, पं. शिवनन्दन ठाकुर कृत महाकवि विद्यापति पृ. २४६-४७ तथा अन्य विद्वान्

कि मैथिली की प्रकृति हिन्दी की विभाषाओं से अवधी के सर्वाधिक मेल में बैठती है । अत: यहां उपर्युक्त चारों तत्त्वों के आधार पर मैथिली के साथ अवधी तथा खड़ीबोली की तुलना प्रस्तुत की जा रही है ।

१. कारक ------

कारक	चिन्ह		
	मैथिली	अवधी	हिन्दी
१. कर्ता कारक	X - X - X	X - X - X	- ने
२. कर्म कारक	कें, कां	ते, के, कां, कंह[1]	को
३. करण कारक	सं, सओं, सौं, से[2]	सन्, से, सौं[3]	से
४. सम्प्रदान कारक	के, कां	कैं, कां, कंह	को
५. आपादन कारक	सं, सओं, सौं, से	से, सौं, तहं, तैं[4]	से
६. संबंध कारक	क, के, का, केर[5]	क, कै, का, केर[6]	का, को, के
७. अधिकरण कारक	मे, पर	मंह, मां, पर	में, पर

१. आचार्य शुक्ल, जायसी ग्रंथावली की भूमिका पृ.१६०
२. ई उत्कंठा वश नहि बूझि कें कहल यदा जलधर सौं ।
जड़ चेतन में भेद बुझै नहि मूढ़ विद्ध स्मर शर सौं ।।
(मेघदूत - मैथिली बाल व्याकरण पृ.७५ से उध्धृत)
विषाष्रव केन मेन हेरि हिंसि हिंसि दाम से -- करण ⟩ कीर्तिलता पृ.८४
निसाद सद्द भेरिसंग खोणि खुन्द तास से - आपादान ⟩
३. बीजु जो खड्ग खड्ग सौं बाजहि, (जायसी ग्रंथावली पृ.२३१)
पाहन पाहन सौं उठ आगी । (वही पृ.२३३)
४. वही, भूमिका पृ.१६०
५. सुल्तान के फरमाने मगरे राह ------- कीर्तिलता पृ.८०
नागरन्हि का मन गाऊ ------- वही पृ.३६
पैरि तुरंगम गंडक का पापी ------- वही पृ.१००
राए पुरहि का पुछा षोत ------- वही पृ.१०२
६. ओहिक सिंगार ओहि पै छाजा ------- जायसी ग्रंथावली पृ.४१
हनुवंत केर सुनब पुनि हांका ------- वही पृ.५७
उतरी बिन परवनन केरि परी (चक्कलस (आधुनिक अवधी पृ.७४)
उइ सुबरन - रेखा केरि फलक ------ वही
सुन्दरता केरि खानि स्यामा ------ वही

२. लिंग ------- व्याकरण में दूसरा मुख्य तत्व लिंग है। कुछ मैथिल विद्वानों का मत है कि मैथिल विद्वानों का मत है कि मैथिली में लिंग भेद होता ही नहीं है,[१] किन्तु कुछने भूत और भविष्यत् कालों में उसे स्वीकार किया है।[२] इस प्रकार हमारे समक्ष एक साथ ही दो परस्पर विरोधी तथ्य उपस्थित होते हैं जिसके निराकरण के लिए विभिन्न कालों के अनुसार लिंग निर्देश का निम्नलिखित अध्ययन अपेक्षित है,-----

काल	मैथिली	अवधी	हिन्दी
१. सामान्य वर्तमान	ओ जाइत अछि (पु.) ओ जाइत अछि (स्त्री.)	वहु जात है (पु.) वह जाति है(स्त्री.)	वह जाता है वह जाती है
२. तात्कालिक वर्तमान	ओ जा रहल अछि ओ जा रहलि अछि	वहु जात है वह जाति है	वह जा रहा है वह जा रही है
३. संदिग्ध वर्तमान	ओ पढ़ैत हैताह ओ पढ़ैत हैतीह (केवल आदरार्थ में)	वहु पढ़त होई वह पढ़ति होई	वह पढ़ता होगा वह पढ़ती होगी
४. सामान्य भूत	ओ अयलाह ओ अयलीह	वहु आबा वह आयी	वे आये वे आयीं
५. आसन्न भूत	ओ अयलाह अछि ओ अयलीह अछि	वहु आबा है वह आबा है	वे आये हैं वे आयी हैं
६. पूर्ण भूत	ओ आएल छलाह ओ आएल छलीह	वहु आबा रहैं वह आई रहै	वे आये थे वे आयी थीं
७. अपूर्ण भूत	ओ खाइत छलाह ओ खाइत छलीह	वहु खाबत रहै वह खाबति रहै	वे खा रहे थे वे खा रही थीं
८. संदिग्ध भूत	ओ पहुंचल हैताह ओ पहुंचल हैतीह	वहु पहुंचल होइ है वह पहुंचल होइ है	वे पहुंचे होंगे वे पहुंची होंगी
९. हेतु हेतु मद् भूत	लिंग भेद नहीं है।	वहु आबत तो काम बनजात वह आबति तो काम बनजात	वे आते तो काम बनजाता वे आतीं तो काम बनजाता
१०. सामान्य भविष्य	ओ अओताह ओ अओतीह	वहु आई वह आई	वे आयें गे वे आयें गी
११. संभाव्य भविष्य	ओ जाइत रहताह ओ जाइत रहतीह	वहु जात रही वह जाति रही	वे जा रहे होंगे वे जा रही होंगी।

१. श्री कृष्णाकान्त मिश्र - मैथिली साहित्यिक इतिहास - पृ.३० तथा
श्री वैद्यनाथ झा का लेख, वैदेही, अप्रैल १९६१, पृ.६२

२. महाकवि विद्यापति - पृ.१४

इसके अतिरिक्त असमापिका क्रिया में भी लिंग भेद है, उदाहरणार्थ ओ पढ़िक विद्वान भेलाह (मै.पु.), वह पढ़ि के विद्वान् भवा (अ.पु.) ओ पढ़िक विदुषी भेलीह (मै.स्त्री.), वह पढ़िके विदुषी भइ (अ.स्त्री.)

उपर्युक्त तालिका से प्रकट है कि एक-आध अपवादों को छोड़कर अधिकांशत: मैथिली के कालों में लिंग भेद पाया जाता है । अत: यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि लिंग भेद के अस्तित्व तथा कहीं कहीं अभाव की मिश्रित प्रक्रिया के मैथिली में होते हुए भी उसकी प्रकृति प्रधानतया लिंग भेद की ही है ।

३. सर्वनाम ------ सर्व नामों में भी मैथिली और अवधी में समानता है, किन्तु खड़ी बोली से उसकी प्रकृति में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है । मोर, तोर, तोरे, तोहार, ओकर, ओ, ई आदि दोनों भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं । इतनी बात अवश्य है कि हिन्दी के अत्यधिक प्रभाव के कारण आधुनिक अवधी में कुछ परिवर्तन अवश्य आ गये हैं । तुलनात्मक अध्ययन के लिए निम्नलिखित तालिका प्रस्तुत की जा रही है -------

पुरुष	मैथिली	अवधी
उत्तम पुरुष	मैं, हम (एक वचन)	मैं, मइँ (एक वचन)
	तिर्यक् - मोंहि	तिर्यक् - मो, मोहि
	संबंध - मोर, हमर, हमार	संबंध - मोर
	बहुवचन - हमरा लोकनि, हम सब	बहुवचन - हम, हमलोग
	तिर्यक् - हमरा सबहि	तिर्यक् - हमहिं
	संबंध - हमरा सबहिक	संबंध - हमार
मध्यम पुरुष	एक व. - तों, तोंह	ए.व. - तू, तै, तइं
	तिर्यक् - तोरा, तोंहि	तिर्यक् - तों तोहि
	संबंध - तोहर, तोहार	संबंध - तोर
	ब.व. - तोंसभ, तोंहसभ	ब.व. - तुम, तुम्ह, तुम लोग
	तिर्यक् - तोरासभ कि तोहर सभक	तिर्यक् - तुम्हहि
	संबंध - तोरा सभक, तोहरासभक	संबंध - तुम्हार, तोहार

पुरुष	मैथिली	अवधी
अन्य पुरुष	एक व. - इ, ई, ओ, जे, से	ए.व. - वह, ऊ, वेइ, तेइ, यह, ई, से ।
	तिर्यक् - एहि, ओहि, जाहि, ताहि	तिर्यक् - ओ, ओहि, उन, उन्ह, तिन्ह, ए, एहि, ते ।
	संबंध - एकर, हिनकर, ओकर, हुनकर जकर, जनिक, तकर, तनिक	संबंध - ओकर, एकर, तेकर ।
	ब.व. - इ, ईसम, ओसम, बेसम, से सम	ब.व. - वेइ, तेइ, ऊ, ए, ये, ते, तवन ।
	तिर्यक् - ई सबहि, ओ सबहि,	तिर्यक् - उन, उन्ह, तिन्ह, इन, इन्हि, तैन ।
	संबंध - ई सबहिक, ओ सबहिक, जे सबहिक, से सबहिक	संबंध - उनकर, तिन्हकर, इनकर, तैकर, तेनकर ।

म के स्थान पर भ पढ़ें

प्रश्न वाचक - के, काहि, ककर, कनिक के सभ (मैथिली)

के, कवन, का, काहे (अवधी)

अनिश्चय वाचक - कियो, कोउ, कंह, किछु, कछु, कथूक, कथी, कथीक, काहु,

कोनो, ककरो, किछुकें (मैथिली)

कोइ, कोउ, काहु, केहं, कछु, कछुक, कुछ (अवधी)

निजवाचक - अपनहि, अपना, अप्पन, अपने, अपना सभ, अहां, अहीं, अहैं,

अहींक, अहैंक, अपनेक (मैथिली)

आपु, आप, आपुहिं, आपन (अवधी)

सर्वनाम मूलक विशेषण ----- अइसन, जइसन, कइसन, एहन, ओहन,

केहन, एतेक, ओतेक, कतेक, ओत कत (मैथिली)

अस, अइस, जस, कस, एतन, ओतन, उत, कत (अवधी)

उपर्युक्त सर्वनामों के विवरण से प्रकट है कि इसके विभिन्न रूपों में मैथिली और अवधी में अनेक समानताएं विद्यमान हैं जो इन दोनों के अति नैकट्य के परिचायक हैं ।

---

१. अवधीका सर्वनाम संबंधी विवरण हिन्दी साहित्य प्रथम खंड के पृष्ठ १६६ से उद्धृत किया गया है ।

४. शब्द मंडार ----- समानता का अन्य तत्व है मूल (ठेंठ) शब्द मंडार । मूल शब्द मंडार की समानता का यह अर्थ नहीं कि बोली और भाषा या दो बोलियों के प्रत्येक शब्द एक ही हो । शब्दों मे ध्वनि विकारगत प्रादेशिक अन्तर वैदिककाल से ही चला आ रहा है । दूसरे, कुछ शब्द विशेष किसी समाज विशेष के द्वारा एक निश्चित अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं ; उन्हीं शब्दों का अन्य समाज में अलग अर्थ होता है । कभी कभी उच्चारण के कारण भी समान शब्दों में परिवर्तन लक्षित होने लगता है, किन्तु वास्तव में यह ऊपरी अन्तर है, केवल ध्वनि परिवर्तित हो जाती है -- मूल वही रहता है । अतएव शव्दावली के साम्य का अर्थ इतना ही है कि ठेंठ बहु संख्यक शब्द दोनों में एक हैं अथवा नहीं ।

एक मैथिल विद्वानने लिखा है कि "घर, द्वार, धोती, सूनब, उठब आदि शब्दावली में कुछ साम्य देखकर अनेक विद्वानोंने मैथिली को हिन्दी की उपभाषा स्वीकार कर लिया है । परन्तु शब्दावली का साम्य गुजराती से लेकर बंगाली तक की प्रत्येक भाषा में है । इस आधार पर उन्हें भी उपभाषा मान लिया जाना चाहिए । यथार्थत: मैथिली और हिन्दी में शब्दावली का भी साम्य नहीं है । ठेंठ मैथिली के शब्द हिन्दी में खोजने पर भी नहीं मिल सकते ।"[१]

इसके पश्चात् लेखकने चौरासी शब्दों की सूची प्रस्तुत करते हुए कहा है कि विस्तार भय के कारण अधिक नहीं दिया जा रहा है । विद्वान्ने अधिकार पूर्ण स्वर में कहा है कि ये शब्द दूसरी भाषा में नहीं मिल सकते । इस घोषणा से उनकी अनभिज्ञता प्रकट होती है । शब्दों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखकने अवधी और भोजपुरी - जो डा. जयकान्त मिश्र के अनुसार हिन्दी की एक उपभाषा है ----- के शब्द-समूह पर तुलनात्मक

----

१. वैदेही, अप्रैल १९६१ में प्रो. वैद्यनाथ झा का लेख ।

विचार ही नहीं किया है । इन शब्दों में से सैंतालीस शब्द उसी रूप और उसी अर्थ में अवधी में भी व्यवहृत होते हैं । व्याकरण की तुला द्वारा हम मैथिली की अवधी के साथ निकटता को लक्ष्य कर चुके हैं ; हम देखेंगे कि शब्दों की समानता भी उस सामीप्य की पुष्टि करती है । उस सूची में प्रस्तुत अवधी में व्यवहृत शब्द इस प्रकार हैं -------

मनुस, हंसब, धीया-पूता, पित्ती-पितिआइन, फनकाहि, गेडुली, लोल, निडर, गब्बर, सेथर, निरागी, मोचंड, मटकी, धौधि, आंचर, पनही, मौनी, मलसी, मलिया, छिट्टा - छिट्टी, कोड़ो, टुट्टा, पोटा, नकटी, कनकी, काटि, आदि ।

उन चौरासी शब्दों में कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो एक प्रकार से किंचित परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होते हैं -- यथा - छोंचब (मै.) शोंचव (अ.), सोंइछ (मै.) - कोंछ (अ.), धिम्मर (मै.) - धुम्मर (अ.), कनाह (मै.) - कनवा (अ.), पोसान (मै.) - पोतान (अ.), धरकट (मै.) - हलकट (अ.) आदि ।

यहां एक बात उल्लेखनीय है कि ध्वनि परिवर्तन कोई मौलिक भेद नहीं है । 'बैसल' शब्द के मध्यवर्ती 'स' का 'ठ' होकर रूप बन जाता है 'बैठल', किन्तु दोनों एक ही हैं । 'स' का 'ठ' होने से शब्द में कोई अन्तर नहीं आया । जब एक परिवार के विभिन्न व्यक्तियों की उच्चारण शैली में अन्तर आ जाता है तब दो बोलियों की ध्वनियों में भिन्नता का होना अत्यन्त स्वाभाविक है । पिता-पुत्र की ध्वनियों में अन्तर आ जाने से उनके संबंध में किसी प्रकार का विक्षेप नहीं आता । अतएव यदि मैथिली और अवधी की ध्वनियों में कुछ अन्तर है तो उनके सामीप्य में बाधा नहीं आती । इसके अतिरिक्त इन दोनों भाषाओं में संबंध वाचक शब्द एवं घरेलू व्यवहार की वस्तुओं के नाम भी अधिकांशत: एक ही हैं --- यथा, माय, बाप, बेटा, बेटी, काका, काकी, भाय, बहिन, भतीजा, भतीजी, मामा, मामी, मौसी,

मौगा (अवधी में मौगिया), सार, सरहोजि, सारि, सासु, ससुर, बागन, थारी, लोटा, बटलोही, करछुल, तौला, बढ़नी, चलनी, चंगेरा, मौनी, सिलौट, लोढ़ा, अदौड़ी, तिलौड़ी, चौकर, सानी, बड़द, महिंस, पाठा, पाठी, आदि । इससे सिद्ध हुआ कि मैथिली और अवधी की प्रकृति एक है ।

उपर्युक्त भाषा और बोली के चार व्याकरणीय भेदक तत्वों के विवरण से प्रकट है कि वाक्य रचना, मुख्य तथा सहायक क्रिया का व्यवहार, संबंध सूचक अव्यय, लिंग भेद आदि में मैथिली-व्याकरण हिन्दी व्याकरण का अनुवर्ती है । किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मैथिली व्याकरण का अपना निजी व्यक्तित्व ही नहीं है । सर्वनाम में आदर भाव के कारण क्रिया में परिवर्तन तथा कहीं कहीं कर्म के अनुसार भी क्रिया में परिवर्तन, वचन के अनुसार क्रिया की अपरिवर्तनशीलता, उत्तम पुरूष में निर्लिंगता, सामान्य वर्तमान तथा हेतु हेतु मदभूत में निर्लिंगता, आसन्नभूत की सकर्मक क्रियाओं में निर्लिंगता आदि अनेक तत्व तथा व्याकरण संबंधी जटिलतारं मैथिली-व्याकरण की अपनी अलग विशेषतारं हैं । जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती ।

इसी प्रकार अवधी में भी सर्वनाम में लिंग भेद, तात्कालिक वर्तमान का अभाव, प्रथम पुरूष के किसी भी काल में निर्लिंगता आदि अनेक जटिल विशेषतारं विद्यमान हैं ।

जो विद्वान् मैथिली को स्वतंत्र भाषा मानते हैं, वे उसे हिन्दी से दूर और बंगला के निकट सिद्ध करते हैं । वे यह भूल जा ते हैं कि बंगला में लिंग भेद नहीं है, जब मैथिली की प्रकृति अधिकांशत: लिंग भेद की है । अत: क्रियाओं में लिंग भेद के उपर्युक्त तथ्यों से स्वयं सिद्ध है कि मैथिली बंगला से दूर और हिन्दी के निकट है । मैथिली को बंगला के निकट सिद्ध करने के लिये इन विद्वानों के पास एक और दलील है, वह है, अछत, छी, अथवा आछी का प्रयोग । किन्तु इन शब्दों के प्रयोग मध्यकालीन अवधी में

भी मिलते हैं । जायसी और तुलसी के ग्रंथों में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं ।[१]

इन विभिन्न प्रामाणिक तथ्यों के विवेचन-विश्लेषण से प्रकट है कि इन भाषाओं के व्याकरण में जहां अनेक समानताएं हैं वहीं कुछ असमानताएं भी विद्यमान हैं । यह स्मरणीय है कि अवधी और हिन्दी में जितनी असमानताएं हैं, उनसे अधिक असमानता मैथिली और हिन्दी में नहीं हैं । मैथिली और अवधी में कितनी निकटता है यह उपर्युक्त विवरणों से प्रकट है । अतएव यह स्वयं सिद्ध है कि अवधी के समान मैथिली भी हिन्दी परिवार की एक उपभाषा है -- एक अभिन्न अंग है ।

मैथिली को स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थान देनेवाले जो युक्तियां उपस्थित करते हैं, उन में से अब केवल दो शेष रह जाती हैं -- स्वतंत्र लिपि का अस्तित्व और मैथिली साहित्य की प्राचीनता ।

लिपि की प्राचीनता के संबंध में प्रो. वैदयनाथ झा लिखते हैं कि "डा. जयकान्त मिश्र तथा प्रो. कृष्णाकान्त मिश्र के अनुसार मैथिली लिपि कम से कम ३००० तीनहजार वर्ष पुरानी है ।"[२] इन्होंने तो इतना ही कहकर विश्राम ले लिया किन्तु प्रो. कृष्णाकान्त मिश्र[3] स्वयं मैथिली लिपि का संबंध राजा उत्तानपाद के राज्यकाल से स्थापित करने में व्यस्त दिखाई देते हैं । इन भावुकतापूर्ण कथनों को छापे की भूल ही माना जा सकता है ।

डा. उमेश मिश्र[४] के अनुसार "कोई भी भाषा सर्वांगपूर्ण तभी हो सकती है यदि उसकी अपनी अलग लिपि हो और यह सौभाग्य मैथिली को भी प्राप्त है । मैथिली लिपि ब्राह्मी लिपि से निकली है और इसका पूर्ण रूप १० वीं शती से बहुत पूर्व ही निर्धारित हो चुका था ।" किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है । "बंगला लिपि ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में

---

१. मति अति ऊंचि, नीच रूचि आछी - मानस, बाल काण्ड
आपु अछत जुबराज पद, रामहि देव नरेस --- मानस अयोध्या काण्ड
काम अछत सुख सपने हु नाही ----------- वही
ते धीर अछत विकार हेतु, जे रहत मनसिज बस किएं --- पार्वती मंगल ।
२. वैदेही, अप्रैल १९६१
३. मैथिल साहित्यिक इतिहास - प्रथम संस्करण ।
४. मैथिली साहित्य परिषद, धौंधर डीहा का अध्यक्षीय भाषण (प्रकाशित) ।

नागरी लिपि से विकसित हुई है । इसका क्षेत्रफल भारत का पूर्वी भाग, मगध, बंगाल आदि है । बंगाल, बिहार, आसाम, नेपाल आदि से प्राप्त दसवीं - ग्यारहवीं शताब्दी के लेखों और दान पत्रों में नागरी के ही नमूने मिले हैं । ग्यारहवीं शताब्दी के पाल वंशीय राजा विजयपाल के देवपारा के लेख में नागरी के कुछ अक्षरों में पृथक्ता दिखाई पड़ती है और उनका झुकाव बंगाल की ओर हो गया है । -------- पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक बंगला लिपि का पूर्णतया विकास हो चुका था । आगे चलकर इसी से वर्तमान मैथिली, उड़िया असमिया, आदि लिपियां विकसित हुईं ।"[१] "तेरहवीं शताब्दी में आकर ही बंगला लिपि का कुछ-कुछ अस्तित्व दिखाई पड़ने लगता है । इतिहास द्वारा यह बताया जा सकता है कि १३ वीं सदी में बंगला १६ वीं सदी में गुरुमुखी और अनुमानत: १७ वीं सदी में गुजराती लिपि का प्रचार हुआ । दसवीं सदी में इन तीनों लिपियों का पता न था ।"[२] उपर्युक्त विवरण से प्रकट है कि बंगला लिपि से कालान्तर में मैथिली लिपि विकसित हुई । दसवीं शताब्दी में जब बंगला लिपि का ही अस्तित्व नहीं था तब उस समय से पूर्व ही मैथिली लिपि की कल्पना कर लेना कल्पना मात्र है । कारण से पहले कार्य का अस्तित्व नहीं सिद्ध किया जा सकता है । डा. मिश्रने तालिका द्वारा यह दर्शाया है कि भोजपुरी, अवधी, व्रज आदि की लिपि हिन्दी है । संस्कृत के विद्वानों को भी "हिन्दी" लिपि का उल्लेख करना, पाठकों को विस्मय में डाल देता है । जिसको विद्वान् वक्ताने "हिन्दी" लिपि कहा है वह देवनागरी लिपि है । मैथिली भाषा भी वर्षों से इसी लिपि में लिखी जाती है । इसकी लिपि के ज्ञाता अब कुछ वृद्ध ब्राह्मण ही शेष रह गये हैं ।

----

१. ब्राह्मी लिपि से विकसित होनेवाली लिपियों का परिचय -
(डा. राज नारायण मौर्य - पृ. १७३)

२. -देवनागरी लिपि- ले. स्व. पं केशव प्रसाद मिश्र - पृ. २०७

लिपि से ही किसी भाषा का अस्तित्व प्रतिष्ठित नहीं होता अर्थात् लिपि की समानता या विभिन्नता से भाषाओं की विशेषताएं स्थिर नहीं होतीं । हिन्दी और मराठी की लिपि एक है किन्तु दोनों स्वतंत्र भाषाएं हैं । अंग्रेजी, फ्रांसीसी और इताली की लिपि एक है, फिर भी वे स्वतंत्र भाषाएं हैं । सिंधी भाषा अरबी लिपि में लिखी जाती रही है, इससे वह आर्य परिवार की भाषा से दूर जाकर शमी-कुल की भाषा नहीं हो जाती । संस्कृत भाषा ब्राह्मी, खरोष्ठी और देवनागरी लिपि में लिखी गयी, इसका यह अर्थ नहीं कि संस्कृत तीन प्रकार की है । कैथी लिपि तो है किन्तु उस नाम की कोई भाषा नहीं है ।

उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन - विश्लेषण से स्पष्टत: लक्षित होता है कि लिपि के कारण न तो किसी भाषा को अनधिकार रूप से उपभाषा का स्थान प्राप्त हो जाता है और न इस कारण ही किसी भाषा का स्वतंत्र अस्तित्व ही स्वीकार कर लिया जाता है । लिपि लिखने के काम में आती है, बोलने में नहीं । अतएव यह स्वत: सिद्ध है कि लिपि का भेद कोई तात्विक भेद नहीं है । इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि लिपि उस जाति विशेष की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है ।

मैथिली साहित्य की प्राचीनता एवं उसकी समृद्धि का गौरव मैथिलों के लिये नितान्त उचित है । हिन्दी की किसी भी उपभाषा को इतना प्राचीन सिद्ध नहीं किया जा सकता । सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध रहने पर भी इसे हिन्दी की एक उपभाषा ही माना जायगा । अवधी और व्रज भी कम प्राचीन और समृद्ध नहीं है फिर भी उन्हें बोली का ही दर्जा मिला है ।

चर्या पदों तथा दोहा कोषों की चर्चा करते हुए मैथिल विद्वानों का कहना है कि इनकी भाषा मैथिली ही है, क्यों कि इन की सामान्य विशेषताएं मैथिली में ही पायी जाती हैं । एक भाषाविज्ञने लिखा है कि "इन चर्यापदों एवं दोहा कोषों की विशेषताओं को देखते हुए मैथिली, मागधी, बंगाली,

आसामी तथा उड़िया के घनिष्ठ संबंध का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है । यद्यपि उस समय में इन भाषाओं में कोई मुख्य और सुस्पष्ट अन्तर नहीं था, फिर भी इन पदों और कोषों की भाषा पुरानी बंगाली ही है ।"[१] जब इन भाषाओं में कोई सुस्पष्ट विभाजक रेखा नहीं थी तब पदों एवं कोषों की भाषा को केवल पुरानी बंगाली ही क्यों स्वीकार कर लिया जाय ? इस तथ्य को पूर्वाग्रह के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा जा सकता । इनकी भाषा के कतिपय प्रत्ययों एवं शब्दों को देखते हुए कुछ विद्वानोंने इनकी भाषा को मैथिली कहना ही अधिक उपर्युक्त समझा है । किन्तु वे प्रत्यय और शब्द भोजपुरी अवधी आदि में भी समान रूप से प्रयुक्त होते हैं । विस्तार भय के कारण इस स्थल पर संक्षेप में ही उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

'ख' तथा 'षा' का उच्चारण चर्यापद एवं मैथिली में समानरूप से होता है । 'य' तथा 'ई' का परस्पर स्थानान्तर हो जाता है । वर्तमान कालिक क्रिया में आज भी 'अई' लगता है ।[२]

'ख' और 'षा' का समान उच्चारण अवधी में भी होता है । 'ई' तथा 'उ' के स्थान पर 'य' और 'व' का उच्चारण अवधी को अधिक पसन्द है । इसी प्रकार 'अ' और 'आ' के उपरान्त 'इं' पसन्द है -- आइ, जाइ, अइ हैं, जइ हैं ।[३]

डा. जयकान्त मिश्र[४] तथा कतिपय अन्य विद्वानों का मन्तव्य है कि दोहाकोष तथा वर्ण रत्नाकर, कीर्तिलता आदि की भाषा में एकता और शब्दावली में समता है । ये शब्द केवल मैथिली में ही प्रयुक्त होते हैं, यथा -

----

१. इन्ट्रोडक्टशन टु द हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, वोल्यूम १ पृ.१०
२. घोंघरडीहा के मैथिली साहित्य परिषद का अध्यक्षीय भाषण ।
३. जायसी ग्रंथावली की भूमिका - पृ.१६६
४. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १ - पृ.१०८ तथा वैदेही में अन्य विद्वानों का लेख ।

जंह, तंह, जाउ, तासु, तेहि, ताहि, तोर, तोरे, तोरि, जिमि, सिरीफल, धीअर, राति, कोरा, भात, पवेश, अशेष, दैगारी, चंगेरा, आपन, आइल, गराहक, खूंटी, संचरई, अइसन, चिन्ह, डरै, आजि, सासु, डाल, आवेश, उठि, मुहचुम्बि आदि । इनशब्दों के अवलोकन से ऐसा स्पष्टत: प्रतीत होता है कि पूर्वाग्रह के कारण उन विद्वानोंने अन्य भाषाओं पर दृष्टिपात करने का कष्ट नहीं उठाया है । पूर्व पृष्ठों पर प्रस्तुत शब्दावलियों से अवधी के साथ इनकी समता प्रकट है, तथापि एक आध उदाहरण इस स्थल पर भी अपेक्षित हैं, जो इस प्रकार हैं -----

कुच कंचुकी सिरीफल उभै	-----	जायसी ग्रंथावली पृ. १३२
जानहुं दुवौ सिरीफल जोरा	-----	वही पृ. २१५
हौं तुम्ह नेह पियर भा पानू	-----------	पृ. १३५
हरियर भूमि कुसुंभी चोला	--------	पृ. १४६
सखि, होति है राति	---------	पृ. १४७
राति-दिवस यह जिउ मोरे	---------	पृ. १५५
घर आउ, आई बसाउ	---------	पृ. १५७
काम कटाछन्ह तोरहि हेरा	---------	पृ. १४७
तोर रूप तस देखे ऊं लोना	---------	पृ. १३८

क्रिया में 'थि' का व्यवहार मैथिली में होता है तो 'थें' का अवधी में । अत: प्रकट है कि चर्यापद एवं दोहाकोष शब्द भंडार पर मैथिली एवं अवधी का समान अधिकार है ।

"मनबोध" की भूमिका के आधार पर एक विद्वान् ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जिस अपभ्रंश का वर्णन हेमचन्द्रने अपने प्राकृत व्याकरण में तथा लक्ष्मीधरने अपनी भाषा चंद्रिका में किया है उसके साथ मैथिली का बहुत सादृश्य है ।[१] किन्तु यह सादृश्य केवल मैथिली के साथ ही नहीं अपितु

----

१. वैदेही, अप्रैल १९६१

अवधी और हिन्दी के साथ भी उसी रूप में है, जो निम्नलिखित उन्हीं के दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट है, -------

बाहु > बाह, बाहा > बांहि (मै.), बांह (हि.)
गौरी > गउरि, गौरी > गौरी, गउरी (मै.) गौरी,
गोरी (हि.) गोरि (अ.)
ठक्कुर > ठाकुर (मै. हि.) । गण्ड > गल्ल > गाल (मै. हि.)
वत्स > बच्छ > बाछा (मै. हि.) आदि ।

पद के अन्त अथवा मध्य में पालि, प्राकृत या संस्कृत के वर्तमान संयुक्ताक्षर मैथिली में असंयुक्ताक्षर हो जाता है, और साथ ही अव्यवहित पूर्व स्वर दीर्घ होता है -----

पिट्ठि (अपभ्रंश) > पीठि (मै.)

बैरिन पीठि लीन्हि वह पाछे ⟩
मलयागिरि कै पीठि सँवारी ⟩ जायसी ग्रंथावली पृ. ४७
लहरैं देति पीठि जनु चढी ⟩

संयुक्ताक्षर के नीचे वर्तमान रेफ के विकल्प से लोप हो जाता है -----
प्रिय > पिय > पिय, पिअ (मै.)

राखउ पिय अहिवात -- जायसी ग्रंथावली पृ. ५५
संकरै पेम चहैं गिउधारी ----- वही पृ. ४१
रवि-परभात तात, वै जूड़ी --- वही पृ. ४६

'इव' के अर्थ में 'जनि' का प्रयोग मैथिली में होता है तो 'जनु' का अवधी में ।
'क्ष' का 'च्छ' वा 'ख' हो जाता है, यथा --- क्षीर > खीर > छीर ।

जोगबाट रूदराछ अधारी ----- जायसी ग्रंथावली पृ. ५३
विलसहु नौ लख लच्छि पियारी --- वही पृ. ५४

डा. उमेश मिश्रने[१] कुछ पद उद्धृत करते हुए कहा है कि ये पद मैथिलीके अति निकट हैं। किन्तु ये पद हिन्दी जगत् के लिए भी अपरिचित नहीं है, जिसके लिए दो-तीन उदाहरण ही पर्याप्त सिद्ध होंगे -------

जह मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाह पवेश ।
तहि वट चित्र विस्राम करू, सरहे कहिअ उवेश ।।

घोरे न्धाने चन्दमणि, जिमि उज्जोअ करेइ ।
परम महासुह एखुकणे दुरिया अशेष हरेइ ।।

हाथे रे कान्काणा मालीउ दापण ।
अपण अपा बुझ तु निअमण ।।

उपर्युक्त प्रमाणों के विवेचन से स्पष्ट है कि चर्यापद तथा दोहा कोषों की भाषा एवं उनकी प्रत्यय-विभक्तियां अवधी तथा अन्य भाषाओं में भी समानरूप से व्यवहृत हुए हैं।

कभी-कभी कुछ मैथिल विद्वान[२] मैथिली के अस्तित्व को खींचकर रामायणकाल तक ले जाते हैं, जिसके लिये वे युक्तियां भी प्रस्तुत करते हैं : जिन में तथ्यान्वेषण की अपेक्षा भावुकता अधिक रहती है। प्रसंग वाल्मिकीय रामायण के सुन्दरकाण्ड का है कि अशोक वाटिका में हनुमानजीने किस भाषा में सीताजी को संदेश सुनाया। श्लोक इसप्रकार है -----

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृतम् ।
रावणं मान्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ।।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्य मर्थवत् ।
मया शान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ।।

----

१. घोंघरडीहा परिषद का अध्यक्षीय भाषण (प्रकाशित)

२. वैदेही में श्री चन्द्रनाथ मिश्र अमर, प्रो.श्री वैद्यनाथ झा आदि का लेख।

इस आधार पर यह प्रमाणित किया गया है कि -- मनुष्य की भाषा देश भेदके कारण भिन्न - भिन्न होती है ; अत: मिथिला देश में उत्पन्न होने के कारण जानकी की भाषा मैथिली ही थी जिस में हनुमानजीने सन्देश सुनाया - यह निश्चित् है । अंत में विद्वानने उस समय के अनुपलब्ध साहित्यिक सामग्री के विषय में खेद प्रकट किया है । इन्हीं दो श्लोकों के आधार पर तमिलनाद के लोगों का क्या विश्वास है, उसका भी उद्धरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, -----

वाराणसी, २६ अकटूबर ।

महाराष्ट्र के वर्तमान और मद्रास के भूतपूर्व राज्यपाल श्री श्री प्रकाशने कल सायंकाल 'यलन मोरा' नामक एक नई हिन्दी मासिक पत्र के प्रकाशनारंभ समारोह के अवसर पर अपने भाषण में बताया कि हनूमानजीने अशोक वाटिका में सीताजी को भगवान राम का सन्देश किस भाषा में सुनाया यह तो अनुसंधान का विषय है । तमिलनाद के लोगों का यह विश्वास है कि हनूमानजीने यह सन्देश सीताजी को तमिल भाषा में सुनाया था ; क्यों कि सीताजी बन्दर की भाषा समझ नहीं सकती थीं और यदि हनूमानजी संस्कृत में बोलते तो उनके, रावण के दरबार का भेदिया समझ लिये जाने की शंका थी । उन्होंने यह समझा था कि सीताजी इतने दिनों तक रामजी के साथ दक्षिणमें रहने के कारण तामिल भाषा अवश्य सीख गयी होंगी । इसलिये हनूमानजीने तामिल भाषा का ही प्रयोग किया ।[१] यह तथ्य भाषा विज्ञान की दृष्टि से नहीं अपितु तथा कथित विद्वानों की मोहान्धता को प्रदर्शित करने के लिए उपस्थित किया गया है ।

उपर्युक्त तथ्यों से मैथिली की प्राचीनता खंडित नहीं होती । इसकी प्राचिनता निर्विवाद है किन्तु जातीय निर्माण की प्रक्रिया में मैथिली हिन्दी के अंग रूप में ही उपस्थित होती है जिसका विवेचन

----

१. सन्मार्ग, दैनिक समाचार पत्र, कलकत्ता, शुक्रवार, २७-१०-१९६१.

पूर्व पृष्ठों पर किया जा चुका है । मैथिली की तुलना में ब्रजभाषा का साहित्य उतना प्राचीन नहीं है, किन्तु खड़ी बोली की तुलना में अति प्राचीन है । परन्तु अब व्रज को कोई स्वतंत्र भाषा नहीं मानता । इस जातीय निर्माण की प्रक्रिया के कारण व्रज, अवध और मिथिला स्वतंत्र जनपद न रहकर एक ही विशाल जातीय प्रदेश के अंग बन गये हैं । अतएव सूर-तुलसी के साथ विद्यापति को भी हिन्दी-कवि कहना ही उचित है ।

मैथिली के समान ही दक्षिणी फ्रांस की भाषा प्रोवांसाल की स्थिति है । इस भाषा का साहित्य भी अतिप्राचीन और समृद्ध है । चौदहवीं सदी के पहले तक आधुनिक फ्रांसीसी भाषा में, जो उत्तरी फ्रांसकी भाषा है, कोई उल्लेखनीय साहित्यिक रचना नहीं हुई थी । प्रोवांसाल में लोग अभीतक साहित्य की रचना करते रहे हैं । बीसवीं सदी में एक कवि को प्रोवांसाल में काव्य-रचना के लिए प्रसिद्ध नोवुल पुरस्कार भी मिल चुका है । किन्तु इस समृद्धि और प्राचीनता के कारण कोई भी विद्वान् प्रोवांसाल को फ्रांसीसी से भिन्न स्वतंत्र भाषा मानने के लिए तैयार नहीं हैं । हिन्दी के संबंध में यही स्थिति मैथिली की है । इसका समग्र प्राचीन साहित्य खड़ी बोली के साहित्य से प्राचीन होते हुए भी साहित्य के अन्तर्गत ही माना जायेगा ।[१]

एक भाषाविद्ने खेद प्रकट करते हुए लिखा है कि "जिन विद्वानोंने भोजपुरी को मैथिली तथा मगही से अलग करके देखा है, तथा जिन्होंने भोजपुरी को हिन्दी की एक बोली के रूप में स्वीकार किया है ; उन लोगोंने ग्रियर्सन तथा चटर्जी जैसे भाषा - शास्त्रियों के मन्तव्य को गंभीरतापूर्वक समझने का उद्योग नहीं किया है ।"[२] किन्तु उन्हीं भाषा शास्त्री द्वारा अनूदित ग्रंथ में ग्रियर्सनने लिखा है कि --"इस प्रकार यह

---

१. यह अंश डा. राम विलास शर्मा की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है ।

२. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - पृ. ३०५

कहा जाता है और सामान्य रूप से लोगों का विश्वास भी यही है कि गंगा के समस्त कांठे में, बंगाल और पंजाब के बीच, अपनी अनेक स्थानीय बोलियों सहित, केवल एक मात्र प्रचलित भाषा हिन्दी ही है। एक दृष्टि से यह ठीक है और इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"[१]

कुछ मैथिल विद्वान् दुराग्रह की सीमा का अति क्रमण कर अपशब्दों का प्रयोग करने लग गये हैं, जिस से उनकी अज्ञानजन्य विवशता लक्षित होती है। इन महानुभावों का कथन है कि "मैथिली भाषा का स्वतंत्र अस्तित्व निश्चित रूप से है, इस में लेश मात्र भी शंका का स्थान नहीं। फिर भी जो इस तथ्य के प्रति सन्देह प्रकट करते हैं, वे या तो मूर्ख हैं या शैतान ; उन्हें या तो भाषा विज्ञान का ज्ञान नहीं है या वे जान बूझकर ऐसा करते हैं।"[२] जहां तक भाषा विज्ञान के ज्ञान का संबंध है, वह पूर्व पृष्ठों के विवेचन से प्रकट है, जिस आधार पर मैथिल को एक बोली का स्थान ही प्राप्त हो पाता है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर प्रस्तुत किये हुए विभिन्न प्रमाणों के निरीक्षण- परीक्षण से यह स्पष्टत: ज्ञात होता है कि शताब्दियों के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं भाषागत समान परम्पराओं के कारण बिहार और उत्तर प्रदेश एक ही महाजाति के अभिन्न अंग बन गये हैं, जिनके मध्य विभाजक रेखा खींचना इन सुदृढ़ परम्पराओं के विरूद्ध है। इस तथ्य को हम दृष्टिगत कर चुके हैं कि बिहार की बोलियों सदैव पश्चिमाभिमुख रही हैं, अत: उन्हें हिन्दी - क्षेत्र से बाहर नहीं रखा जा सकता। यह अलग बात है कि कुछ पूर्वाग्रही विद्वान् अपनी हठवादिता

---

१. भारत का भाषा सर्वेक्षण, भूमिका पृ. ४२

२. रचना संग्रह (वैदेही प्रकाशन), तृतीय भाग, पृ. ६४

के कारण इन बोलियों की स्थिति 'त्रिशंकु' की भांति बना रहे हैं, जो किसी भी स्थिति में लाभदायक नहीं । एक उल्लेखनीय तथ्य यह है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती, कि हिन्दी की उपभाषाओं में सर्वाधिक प्राचीन एवं समृद्ध मैथिली ही है, जिसकी साहित्यिक परम्परा अविच्छिन्न रूप से इस युग तक तीव्र गति से प्रवहमान होती चली आयी है । आधुनिक युग में इस भाषा में काव्य की प्रत्येक विधा पर मौलिक कृतियां प्रस्तुत की जा रही हैं । नाटक के क्षेत्र में इसकी प्राचीनता एवं समृद्धि का परिचय परवर्ती अध्यायों के विवेचन से प्राप्त हो जायेगा । मैथिली को हिन्दी की एक उप भाषा स्वीकार कर लेने से इसके साहित्यिक-प्रगति का मार्ग कदापि अवरूद्ध नहीं होता है । अंगांगि के सम्बन्ध के कारण ये दोनों एक दूसरे के साधक हैं, बाधक नहीं । आवश्यकता इस बातकी है कि भाषा और उपभाषा की गुत्थियों को सुलझाने के स्थान पर इसको यथावत् रूप में स्वीकार कर, अन्धकार के गर्भ में टिमटिमाते हुए मैथिली लोक साहित्य, संस्कृति, गाथा आदि की शिखा को प्रज्ज्वलित करने का सम्मिलित सत्प्रयास किया जाये, जिसका आलोक समाज का पथ-प्रदर्शन कर सके ।

---000---